वाल्यूम-2 गुरू पूर्णिमा अषाढ़ शुक्ल 15 वि.स. 2075, 27 जुलाई 2018 अंक - 2

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

अर्द्ध वार्षिक

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

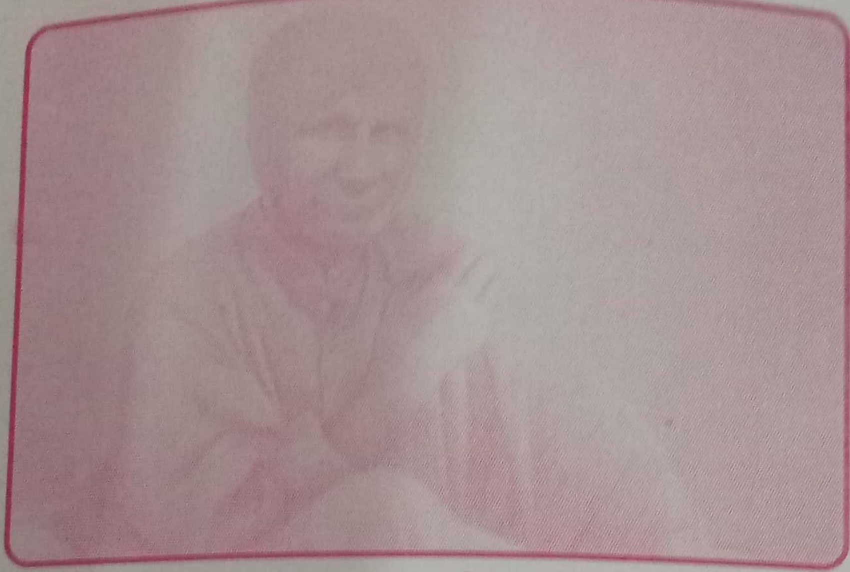

पूज्य स्वामी जी अखण्डानन्द जी महाराज (पीली कोठी)

प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज। पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज।।
अन्तर में स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना। निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना।।
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन। पाप–वासना उठते ही हो नाश लाजसे वह जल–भुन।।
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे। तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे।।
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार। इसी भावना से अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ। केवल तुझे रिझाने को, बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

आश्रम के प्रतिदिन के कार्यक्रम

प्रातःकाल 4:30 बजे से 5.30 बजे तक – प्रभाती ब्रह्म कीर्तिन
प्रातःकाल 5.30 – आरती
प्रातःकाल 5.35 बजे से 7.00 बजे तक – योगाभ्यास
प्रातःकाल 8.00 बजे से 9.00 बजे तक – गीता स्वाध्याय
सायःकाल 4.00 बजे से 6.00 बजे तक – योगवशिष्ठ महारामायण की कथा तथा सन्त महापुरूषों द्वारा वेदान्त के भजन कीर्तन व उपदेश
सायःकाल 3.00 बजे से 5.00 बजे तक – (16 अक्टूबर से 14 अप्रैल) शीतकालीन समय
(15 अप्रैल से 15 अक्टूबर तक) ग्रीष्मकाल

आश्रम के वार्षिक कार्यक्रम

गुरू पूर्णिमा (आसाढ़ सुदी पूर्णिमा)
पुण्य स्मृति – बसन्त पंचमी (माघ सुदी पंचमी)

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

Vol -2 गुरू पूर्णिमा अषाढ़ शुक्ल 15 वि.स. 2075, 27 जुलाई 2018 अंक – 2

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, सम्पादक स्वामी शुकदेवानन्द द्वारा वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, 178, गुंसाईपुरा, झांसी से मुद्रित व श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झंसी से प्रकाशित।

–सम्पादक, स्वामी शुकदेवानन्द

संस्थापक एवं संरक्षक
स्वामी हीरानन्द जी महाराज एवं
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)

प्रधान सम्पादक :
स्वामी शुकदेवानन्द जी
प्रबन्धक :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति

सम्पादक मण्डल :
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता
श्रीमती कुमकुम बिसारिया
डॉ. रंजना शर्मा

प्रकाशन कार्यालय :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)
पिन कोड – 284003
फोन नं0 : (0510) 2360251

अर्द्धवार्षिक
मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिये

मुद्रक : **वीर बुन्देलखण्ड प्रेस**
गुसाईपुरा, झाँसी (उ.प्र.) फोन नं0 0510–2332931
Email : veerbundelkhandpress@gamil.com

भारत सरकार
प.सं. UPHIN/2016/73634

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
01	सम्पादकीय	स्वामी शुकदेवानन्द	03
02	गुरू से प्राप्त ज्ञान	स्वामी हीरानन्द	04
03	गुरू आश्रम	इं. जे.पी. गंगेले (लंकेश)	05
04	विज्ञान एवं आध्यात्म	राजेन्द्र मिश्रा	06
05	परम पू. 108 स्वामी श्री शुकेदेवानन्द का योग शिविर में ''बाइसवाँ पुष्प''	प्रमोद कुमार गुप्ता	08
06	ऊँ श्री गुरूवे परमात्मने नमः	श्रीमती रूकमणी शर्मा	10
07	सुख में भूयात्, दुःख में माभूत	स्वामी पूर्णानन्द	12
08	अपने को पहचानें	पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	13
09	आत्म दर्शन	प्रमोद कुमार गुप्ता	15
10	ऊँ तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरूवे नमः	ब्रह्मचारी राघवेन्द्र	16
11	उत्कृष्ट विचारों का सतत् सानिध्य	डॉ. रंजना शर्मा	17
12	मनुष्य रूपेण मृयाश्चरिन्त	कुमकुम बिसारिया	20
13	गुरू से ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाए	श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव	22
14	अनिर्वचनीय	पुरूषोत्तम नारायण गुप्त	23
15	गीता में प्रतिपादित भक्तियोग की प्रासंगिकता	डॉ. बी. बी. त्रिपाठी	24
16	दायित्व – एक सामाजिक जागृति	कुमकुम बिसारिया	28
17	ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना	पं. वेद प्रकाश त्रिवेदी	29
18	सद्गुरू वैद वचन विश्वासा	ठा. लाखन सिंह तोमर	31
19	ईश्वर शक्ति	प्रमोद कुमार गुप्ता	32

पाठको से निवेदन

गुरू भक्त अपनी ई–मेल पर ''अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता'' पत्रिका निःशुल्क चाहते हैं, तो उक्त ई–मेल आईडी **neerajnikhra@gmail.com** पर संपर्क करके प्राप्त कर सकते हैं।

सम्पादकीय...............................

परमात्मा कण–कण में व्यापक होते हुए भी, मनुष्य के रूप में उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है। मनुष्य के जीवन में चारों पुरूषार्थों का महत्व है – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष जिसमें मोक्ष प्रधान है मोक्ष यानी जन्मजन्मान्तर से हमारे अन्तःकरण में भरी हुई वासनाओं से मुक्ति। यह अन्तःकरण ही सूक्ष्म शरीर अथवा पुरीअष्टका कहलाता है। इसमें मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध आदि की वासनाऐं जीवभाव बनकर कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में आती–जाती रहती हैं। ईश्वर कृपा से जब हम मनुष्य का शरीर पाते हैं तब हमें नवीन शुभाशुभ कर्म करने का अधिकार प्राप्त होता है। यदि हमारी बुद्धि वासनाओं से ज्यादा आक्रांत होती है तो हमारी वृत्ति रजोगुणी अथवा तामसी होती है और यदि ईश्वर कृपा से हमारी बुद्धि में सतोगुण का प्रभाव अधिक रहा तब हम शास्त्रानुसार अपने जीवन को चलाने का प्रयास करते हैं। जिससे जीवन में संयम–नियम आने से हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है तज्जनित हम शारीरिक कष्ट तथा सांसारिक परेशानियाँ जो हमारे कर्तव्य पालन में बाधायें बनकर खड़ी होती हैं उनको धैर्यपूर्वक सहते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ते हैं। यही कर्तव्य परायणता धर्म कहलाता है जो हमारे दृष्टिकोण को विशाल बनाता है तथा हमारे जीवन में सद्विचारों को बढ़ाने में सहायक होता है। सद्विचार, सत्संग आदि मोक्ष के द्वारपाल हैं मोक्ष यानी सांसारिक वासनाओं से मुक्ति। सांसारिक वासनाऐं हमारे जीवन में जन्म–जन्मान्तर से भरी हुई हैं। हमें परमात्मा ने पांच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पांच कर्मेन्द्रियाँ कर्म के रूप में दी है। ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ अपना कार्य मन के इशारे से ही सम्पन्न करती हैं। संसार में सारा ज्ञान, ज्ञानेन्द्रियाँ से ही होता है तथा समस्त कार्य ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियों के समन्वय से होता है।

कर्मेन्द्रियाँ अंधी हैं तथा ज्ञानेन्द्रियाँ लूली हैं लेकिन यह अंधी और लूली मिलकर के संसार की यात्रा कर रही हैं। मन इनका संचालक है, मन का नियंत्रण बुद्धि के हाथ में है। बुद्धि संसार को मन सहित ज्ञानेन्द्रियों से जानती है तथा उसके पास विचारण एवं निर्णायक शक्ति है।

यह हृदय–स्थित चैतन्यपुरूष की पत्नि है जब यह पतिव्रता होती है तब प्रत्येक कार्य अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए करती है। जब यह इन्द्रियों से यानी सेवकों से प्रभावित हो जाती है तब यह वासनायुक्त हो जाती है और जीव को अधोगति में भटकाती है। लेकिन जब यह पतिव्रता होती है यानी शास्त्रानुसार हमारे जीवन को चलाती है तब हमारे समस्त कार्य ईश्वर अर्पित होते हैं, जो कि हृदय विशिष्ट चेतन नारायण है। यह एक ही चेतन चींटी से लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबकी आत्मा है। इसी का नाम शिव है यही नारायण है। शरीररूपी नगर में शासक होकर रहने के कारण ईश्वर कहलाता है। प्रत्येक शरीर में इसको पुरूष कहते हैं, सब शरीरों में होने से इसको पुरूषोत्तम कहा जाता है। जब बुद्धिपूर्वक किये गये सभी कार्य इसको समर्पित होते हैं तब यही भक्ति बन जाते हैं। यही पुरूषोत्तम सारी सृष्टि में व्यापक होने से विराट पुरूष है। यही ईश्वर है, इसी की भक्ति हमें संसार की समस्त वासनाओं से मुक्त करके परमात्मैक्य कराने वाली होती है। यह हमारी आत्मा है, यही ''मैं'' हूँ, इसी का नाम ज्ञान है।

– स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी

गुरू से प्राप्त ज्ञान

एक समय कबीर दास जी शैय्या पर पड़े हुये थे कबीर दास की पत्नी ने चक्की चलाई तो कबीर दास जी ने एक दोहा लिखा।

दोहा – चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटों के बीच में साबित बचा न कोय।।

कबीर दास जी का एक लड़का था उसका नाम था कमाल उसने कबीर जी का दोहा लिखा देखा तो कमाल ने भी एक दोहा लिखा।

दोहा – चलती चक्की देखकर हसा कमाल ठटाय।
कील सहारे जो रहें तो कैसे पिसजाय।।

कबीर दास जी की एक लड़की थी उसका नाम था कमालनी तो कमालनी ने दोनों दोहा लिखे देखे तो उसने भी एक दोहा लिखा।

दोहा – कील सहारे जो हुआ नकटा बूँचा होय।
साबित वही सराइये जो उचट बाहिरे होय।।

कबीर दास जी के गुरू थे स्वामी रामानन्द जी जब स्वामी रामानन्द जी आए उन्होंने तीनों दोहा लिखे देखे तो विचार किया कि इनको अभी ज्ञान नहीं हुआ तो स्वामी रामानन्द जी ने भी एक दोहा लिखा –

दोहा – उचट बहिरा जो हुआ तो बिन बिन पिस जाय।
ना कोई पिसा न पिस रहा सतगुरू रहे बताय।।

अर्थात– पिसना पिसाना कब बनता है जब तीन होबें पीसने वाली माता हो अनाज हो चक्की हो जब एक ही चेतन है दूसरा है ही नहीं तो कौन पीसे कौन पिसे किसमें पिसे।

जैसे – स्वप्न में एक पीसने वाली माता बैठी है अनाज रक्खा है चक्की रखी है माता चक्की चला रही है अनाज पीस रही है जब आप जागे तो न पीसने वाली माता रही न अनाज रहा न चक्की रही केवल अपना आप देखने वाला रह गया तो जैसे स्वप्नद्रष्टा में स्वप्न कल्पित है उसी प्रकार जागृत के द्रष्टा से जागृत कल्पित है तो देखो जागृत स्वप्न कल्पित स्वप्न में न है इसलिए जागृत कल्पित स्वप्न जागृत में न रहे इसलिजए स्वप्न कल्पित जागृत स्वप्न सुषुप्ति में न रहे इसलिये दोनों कल्पित सुषुप्ति जागृत स्वप्न रहे इसलिए सुषुप्ति का कल्पित जो अपना आप द्रष्टा है तीनों का देखने वाला वह सत्य है वही परमात्मा का स्वरूप है वही मैं हूँ जीव अज्ञान के कारण अपने को देहमान बैठा है इसलिए परमात्मा को अपने से अलग मानता है और परमात्मा को ढूंडता फिरता है।

किसी कवि ने कहा है –

सुनोरे भाई यह कैसा उपहास।
ढूंड़त फिरत बूँद पानी को शक्कर खोज मिठास।।
आभूषण सो सोना खोजत खोजत सूत कपास।
जो भूखा सो भूख खोजत जो प्यासा सो प्यास।।
अमावस रात्रि अंधेरी खोजत खोजत सूर्य प्रकाश।
खोजत रहत वर्ष निशबारस अपने बारहमास।।
एसेहि जीव ब्रह्मा को खोजत यासे रहत उदास।

भगवान शंकराचार्य ने कहा है –

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटभीः।
ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परः।।

अर्थ – ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है जीव ही ब्रह्म है और दूसरा कोई नहीं।

– सतगुरू पद रजेच्छु
स्वामी हीरानन्द
संस्थापक एवं संचालक
अखण्ड विश्वम्भरानन्द सन्त आश्रम झांसी

गुरू आश्रम

गुरू आश्रम की महिमा सुनिये, जो भक्त यहाँ पर आते हैं।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है बिन माँगे सबकुछ पाते हैं।।

1. यदि प्रेम से भजन करो निशदिन तो गुरू प्रसन्न हो जायेगें।
दुनिया के झंझट दूर रहें खुशियों के कमल खिलायेंगे।।
पापी अरू घोर अधर्मी के भी पाप यहाँ धुल जाते हैं।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है, बिन माँगे सबकुछ पाते हैं।।
2. संसार बुरा, ब्रह्माण्ड बुरा, पर गुरू आश्रम तो है पवित्र।
जब गुरू ने बुरे को थाम लिया, तब समझ में आया गुरू चरित्र।।
हठ धर्मी की हठ तोड़ने को गुरू आश्रम में ही बुलाते हैं।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है, बिन माँगे सब कुछ पाते हैं।।
3. अंधे, लंगड़े, लूले, बहरे, ये सभी आश्रम आते हैं।
गुरू की इन पर होती है कृपा, ये सब अच्छे हो जाते हैं।।
इस लोक में आश्रम पहुंच गये, परलोक में जगह बनाते हैं।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है, बिन माँगे सब कुछ पाते है।।
4. महल, अटारी, माल, खजाने, सब यही धरे रह जाते है।
आश्रम की देन यही रहती, ये सब स्वप्निल हो जाते हैं।।
''लंकेश'' आश्रम को पकड़ो, गुरू सच्ची राह बताते है।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है, बिन माँगे सब कुछ पाते हैं।।

गुरू आश्रम की महिमा सुनिये, जो भक्त यहाँ पर आते हैं।
सुख चैन यहाँ पर मिलता है बिन माँगे सबकुछ पाते हैं।।

– इं. जे.पी. गंगेले
''लंकेश''

विज्ञान एवं अध्यात्म

बीसवीं शताब्दी वैज्ञानिक खोजों की शताब्दी थी और 21वीं शताब्दी रोबोटिक्स एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की शताब्दी के रूप में विकसित हो रही है। कम्प्यूटर एवं स्मार्ट मोबाइल फोनों में खासकर ऐप्पल कम्पनी के फोनों पर इस तरह के आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रोग्राम डाले जा रहे हैं जिससे आपका फोन आपकी आवश्यकताओं और आपके मनोरथ के अनुसार आपको जानकारी उपलब्ध करा रहे हैं। अभी हाल में ही गूगल कम्पनी ने एक ऐसा एप्लीकेशन प्रोग्राम बनाया है जिसके द्वारा आप का स्मार्ट फोन आपकी ओर से वह सभी वार्तालाप करने में सक्षम है जो आपके निजि सचिव करते हैं जैसे कि आपके एपोन्टमेंट तय करना अगर उसमें कुछ बदलाव है तो दूसरी पार्टी को उसकी सूचना देना। आपके और उनके आवश्यकतानुसार उनमे बदलाव लाना इत्यादि। इसी प्रकार होलोग्राफी के माध्यम से आप किसी भी व्यक्ति का होलोग्राफ सजीव चित्रण के रूप में अपने पास ट्रांसमिट कर सकते हैं और हजारों मील दूर बैठे उस व्यक्ति को होलोग्राफ आपके सम्मुख इस प्रकार प्रकट हो जाता है जैसे वह सजीव हो और वह चलते फिरते, उठते–बैठते आपके साथ उसी तरह बात करता है जैसे सजीव आदमी से आप की बात हो रही हो। कहने का तात्पर्य यह है कि 21वीं शताब्दी में विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि मशीन, रोबोट इत्यादि काफी हद तक मनुष्य की तरह सोच विचार करते हुए आपका सहयोग देने लगेंगे।

प्रश्न है कि अगर मशीन मनुष्य का स्थान लेने लगेगी तो मनुष्य का भविष्य क्या होगा? क्या इस पृथ्वी पर मशीन का राज्य हो जाने की संभावना बड़ जायेगी। ऐसा सम्भव है कि कुछ अवस्थाओं में लोकालाइरड स्थान पर यह संभव हो जाये परन्तु मशीन, पशु, और मनुष्य में सबसे बड़ा अन्तर है विवेक का। मनुष्य अपना हर कार्य विवेक की कसौटी पर नाप जोखकर करता है। जो व्यक्ति देह को ही अपना सब कुछ मानते हैं। वह अपने सभी निर्णय देह को सर्वोपरि मानकर लेते हैं। उन्हें शायद भविष्य में मशीन एवं रोबोट से क्षति पहुंच सकती है परन्तु कुछ बिरले व्यक्ति जो अध्यात्म के मनीषी है वह देह को भी स्थूल, मिथ्या एवं आत्मन् को ही सर्वव्यापक मान कर कार्य करते है उन पर मशीन, रोबोट इत्यादि कभी विजय प्रापत नहीं कर सकते।

दादा गुरू स्वामी अखण्डानन्द जी कहा करते थे। देखो–देखो देखने वाले को देखो। अर्थात स्थूल–सूक्ष्म शरीर एवं इन्द्रियों के परे जो इन सब में भाषित है उसको देखो, उसको पहचानो। एक बार आत्मज्ञान हो गया, अपना निज स्वरूप समझ में आ गया तो फिर सभी राग–द्वेष से छुटकारा हो जाता है। गुरूदेव स्वामी विशम्भरानन्द कहा करते थे कि यह विज्ञान का काल है, उसे आत्मसात करो परन्तु अध्यात्म को गौचर मत होने दो। विज्ञान आपको सामाजिक जीवन के कर्तव्यों से आपको निजात दिलायेगा परन्तु अध्यात्म आपको चौरासी लाख योनियों में विचरण करने से आपको बचायेगा।

आध्यात्म की सबसे पहली सीढ़ी होती है विवेक की उत्पत्ति। विवेक के द्वारा आप सत् एवं असत् में अन्तर को समझने के योग्य बन जाते हैं। एक बार आप सत् और असत् के अन्तर को समझने योग्य बन गये तो फिर आपके सभी कर्म सत्–असत् की विवेचना के उपरान्त कार्यरत होने लगेंगे। सत् वह है जो शाश्वत् है जिसमें देश भेद, काल भेद एवं अवस्था भेद नहीं है। वह अजर अमर है, सर्वव्यापक है और उसके अलावा इस सृष्टि में कुछ और व्यापक नहीं है। जो सत् नही वह सब असत्

है अतः यह पूरा ब्रह्माण्ड, संसार, पृथ्वी सभी पिण्ड इत्यादि जो इन्द्रियों के द्वारा गोचर हो रहे हैं वह सब असत् है। आज हैं कल नहीं होंगे। उनमें प्रतिक्षण बदलाव हो रहा है। एक बार विवेक की उत्पत्ति हो गई तो रागों में वैराग्य प्राप्त होना सुनिश्चित है। जब राग ही नहीं रहा तो षट् सम्पत्ति प्राप्त होना अवश्यम्भावी है। मुमुक्षत्व की इच्छा फिर आपको अपने निज स्वरूप के आत्मदर्शन कराने में पूर्ण सहायक होंगे।

गुरूदेव विश्म्भरानन्द विलक्षण व्यक्तित्व थे। उनके सरल स्वभाव से लोग उनके विलक्षण व्यक्तित्व से भटक जाते थे उनको भी एक अपने जैसा सामान्य नागरिक मान कर उनसे उसी प्रकार व्यवहार करने लगते थे। गुरूदेव प्रतिपल अपने निज स्वरूप में विचरित रहते थे। उनको उस स्वरूप से सन्तों एवं भक्तों को बाहर निकालने में प्रयोजन करना पड़ता था परन्तु वास्तविकता में वह पूर्ण समर्थ, एकदिश, एकनिष्ठ ब्रहम की पराकाष्ठा मात्र थे।

वह कल भी हमारे साथ स्थूल शरीर धारण किये हुए विचरित थे और आज भी सभी भक्तों का दिशा–निर्देश सूक्ष्म रूप में कर रहे हैं। उनको सभी भक्त, संत, एक सामान्य रूप से प्रिय थे। न कोई अधिक और न कोई कम। आज उनके इस स्थूल देह निर्वाण दिवस के दिन हमको गुरूदेव के बताये हुए रास्ते पर चलना अति आवश्यक है।

'शिवोहम्''

– राजेन्द्र मिश्रा
ए–405, रेल विहार
सेक्टर–45, फरीदाबाद

प्रार्थना

हे ज्ञानमयी गायत्री माँ अज्ञान हरो मानस जन का।
पावन कर दो हम पतितों को उद्धार करो सेवक जन का।।

नवयुग की संधि बेला में वेदो का ज्ञान वहे नदि में।
तेरी कृपा दृष्टि की शीत पवन सुरभित कर दे जनको हृदि में।
विश्वास का सावन बरसा कर समृद्ध करो घर आँगन को

तेरी ज्योति अखण्ड जगी जब से कलुषित मन का अज्ञान नसा।
अब चिन्तन मनन समर्पण से जीवन में अलौकिक ज्ञान बसा।।
हम जीत सकें इन्द्रिय स्वकीय संकल्प बनो इस तन मन का।

तेरी जिह्वा को छूकर देवलिपि वेदों की सुन्दर श्रृचा बनीं
तेरे कण्ठ से फूटा जो मोती मन्त्रों की पावन बेल सजी
माँ सौम्य दृष्टि की वर्षा से स्पर्श करो प्राणीजन का।

– कुमकुम बिसारिया
आदर्श नगर, झांसी

''परम पूज्यनीय 108 स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में बाइसवाँ पुष्प''

ईश्वर सर्वव्यापी है, फिर भी हम अज्ञान के कारण उसको जाने बिना दुःखी रहते हैं। यदि हम उसे पहचान लें तो हमारे दुःखों का समूल अन्त हो जाता है। विचार करने की बात है कि वह अक्षर स्वरूप परमात्मा जब सर्वत्र है, हम यह भी जानते हैं कि वह सदैव है उसका कभी अभाव नहीं होता तथा जो कुछ भी भूतकाल में हो चुका है एवं वर्तमान में है एवं भविष्य में होगा वह सब उसी अक्षर पुरूष परमात्मा की महिमा का विलास है। यदि हम विचार करें कि जब सब कुछ परमात्मा ही है तब हम उससे बाहर तो नहीं है एवं वह भी हमसे बाहर नहीं है। तब फिर वह हमारे अन्दर किस रूप में हैं?

हमारे ऋषि मुनियों ने उपनिषदों में इसी रीति से विचार किया है। उन्होंने सीधे परमात्मा के स्वरूप में मेंढक की भांति छलांग लगाने को कहा है और उनके अनुभव में महावाक्य आया – ''अयमात्मा ब्रह्म'' माण्डूक्य उपनिषद् जाग्रत अवस्था में हमारी आत्मा इन्द्रियों के माध्यम से संसार को जानती है दूसरे शब्दों में अपनी ही सृष्टि का आनन्द ले रही है।

इस अवस्था में हमारी चेतना बहिर्मुख होती है। इसीलिए प्रकृति ने मन सहित छहो इन्द्रियाँ बहिर्मुख बनायीं। जाग्रत में अंतरिक्ष हमारा सिर है, पृथ्वी हमारे पैर हैं, दिशायें हमारी भुजाऐं हैं, आकाश हमारा उदर है, सूर्य चन्द्र हमारे नेत्र हैं, जल हमारा लोहू (रक्त) व मूत्र है, वायु हमारी प्राणवायु है। इस प्रकार से सप्ताड्ंग होकर हम उन्नीस मुखों से इस संसार का भोग करते हैं। उन्नीस मुखों में पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच विषय एवं मन बुद्धि चित्त अहंकार अन्तःकरण चतुष्टय शामिल हैं।

इस तरह से हम जाग्रत अवस्था में स्थूल जगत का भोग करते हैं और वैश्वानर कहलाते हैं। गीता में श्री भगवान कृष्ण ने कहा है –

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। **श्रीमद्भगवद् गीता 15:14**

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गीता में श्री कृष्ण के रूप में परमतत्त्व ही बोल रहा है। स्वप्नावस्था में हम हू–ब–हू जाग्रत की भाँति एक नया संसार खड़ा कर लेते हैं। जिसमें जाग्रत की भाँति ही देशकाल एवं वस्तुओं का अनुभव–सा होता है और हम जाग्रत के संसार से पूरी तरह अलग होकर जाग्रत की भाँति ही स्वप्न संसार का स्पप्नपुरूष होकर स्वप्न संसार को भोगते हैं, तथा हम तेजस कहलाते हैं। जब हम गहन सुषुप्ति में आते हैं तब जाग्रत अवस्था की भाँति मन में न कोई कल्पना कर रहे होते हैं, न ही स्वप्न की भाँति कोई दृश्य देख रहे होते हैं। उस समय हम जाग्रत एवं स्वप्न को अपने में लीन करके प्रकृति के साथ आनन्द में स्थित होते हैं तथा हमारी वासनायें बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। इस अवस्था का नाम प्राज्ञ है। यह प्राज्ञ ही ईश्वर है तथा यही सर्वज्ञ है, यही हमारा अन्तर्यामी नारायण है। इसी को भक्तों ने एवं योगियों ने पुरूषोत्तम आदि अनेक नामों से जाना है।

हमारे जीवन में यह तीन अवस्थायें ही जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति के रूप में देखने में आती हैं। वास्तव में विचार करके देखें तो हम इन तीनों के प्रकाशक मात्र हैं। जैसे सूर्य अपनी गति से पृथ्वी का परिक्रमा कर रहा है और उसे यह मतलब नहीं है कि कहाँ दिन है कहाँ रात्रि है, किसको गर्मी

सुखदायी है या किसको दुखदायी है, किसको जीवन मिल रहा है या किसको मृत्यु मिल रही है वह सूर्य तो अकर्ता, अभोक्ता होकर अपनी गति से चल रहा है। लेकिन हम जानते हैं कि सारी सृष्टि का वही एक प्रकाशक है।

''मैं'' ही सत् है तथा सारी सृष्टि का प्रकाशक आत्मचेतन ही है। आत्मा के रूप में ''त्वं'' पद ही ''तत्'' पद है, ''तत्'' पद के रूप में ''मैं'' ब्रह्म कहलाता है तथा ''त्वं'' पद से आत्मा कहलाता है। ''तत्'' पद और ''त्वं'' पद घटाकाश और महाकाश की भाँति अलग–अलग नहीं है। इसी प्रकार से एक ही आत्मा निराकार से सारी सृष्टि का प्रकाशक एवं नियंता है वही विश्व तेजस एवं प्राज्ञ उपाधियों से विभूषित है। वह स्वरूप में अकर्ता, अभोक्ता तत्त्व है समस्त उपाधियाँ इसी में कल्पित हैं यही हमारा स्वरूप है।

यदि हम गुरूदेव के सानिध्य में जिज्ञासु होकर विचार करें कि जाग्रत सत्य है या स्वप्न सत्य है? तब हम इस निर्णय पर पहुंचेगें कि न जाग्रत सत्य है और न ही स्वप्न सत्य है। जैसे स्वप्न, जाग्रत में मिथ्या हो जाता है। स्वप्न का देखना तो सत्य था, किन्तु जो कुछ भी देखा वह मिथ्या है ऐसा जाग्रत में अनुभव हो जाता है।

इसी प्रकार हम अपने ''मैं'' को जब तुरीयतत्त्व के रूप में अनुभव करेंगे तो हमारा यह संसार जिसपर हमने मैं – मेरे का अभिमान कर रखा है वह सब रेगिस्तान में रेत पर पड़ती हुई सूर्य किरणों को देखने से जलाभास की भाँति मिथ्या हो जाता है। जो जल देखने में तो आता है किन्तु पीने के लिए नहीं मिल पाता और मूर्ख हिरण जल की तलाश में दौड़–दौड़ कर प्राण गवां देता है।

इसी भाँति हम इस संसार में धन–परिवार से सुख–शान्ति चाहते हैं लेकिन शान्ति स्वरूप तो हम स्वयं हैं। जब तक हम अपने ''मैं'' को नहीं पहचानेंगे तब तक शान्ति हमें मृगमारीचिका ही रहेगी।

– प्रमोद कुमार गुप्ता

''योग प्रशिक्षक'' झाँसी

आत्म–दर्शन

कस्तूरी कुण्डलि बसै – मृग ढूढ़ै वन मांहि।
ऐसे घट घट राम है दुनियाँ देखे नांहि।।

जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्ध मृग को जंगलों में भटका देती है ठीक उसी प्रकार भौतिक साधनों में आनन्द खोजता हुआ मानव अविवेक पूर्ण कार्य करता रहता है। अन्तर आत्मा के दर्शन के अभाव में उसकी समस्त चेष्टाऐं बहिर्मुखी हो जाती हैं। चेतना अपने उद्‌गम स्थल पर पहुंचकर ही शांति एवं आनन्द की शाश्वत अनुभूति कर सकती है। हृदय में विराजमान अन्तरआत्मा से मिलने वाले आनन्द को प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक साधनाओं का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा। जीवन पर्यन्त मनुष्य जिस की प्राप्ति के लिए सांसारिक आकर्षणों में भटकता रहता है। वह आत्मदर्शन से ही संभव है।

ऊँ श्री गुरूवे परमात्मने नमः

आनन्दमानन्दकरम् प्रसन्नम् ज्ञानस्वरूपं निज बोध युक्तं।
योगीन्द्रमीशं भव–रोग–वैद्यम् श्री सदगुरूम् नित्यमहं नमामि।।

एक व्यक्ति बाजार जा रहा था। मोहल्ले वालों ने कहा, ''हमारा सौदा लेते आना। पैसे किसी ने नहीं दिये तो वह क्या करेगा? पहले अपना सौदा लेगा या औरों का? तो कहना पड़ेगा पहले अपना सौदा लेगा फिर यदि रूपये पास रहेंगे तो औरों का सौदा लेगा। ठीक इसी प्रकार अपना सौदा क्या है, ''ज्ञान'' क्योंकि गीता में कहा है –

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतप।
सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

अर्थ – हे! अर्जुन जितने प्रकार के यज्ञ हैं उन सब में श्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ ही है ऐसा मेरा मत है।

नहिं ज्ञानेन सदृशम् पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयम् योग संसिद्धि कालेनात्मनि विन्दति।।

अर्थ– निःसन्देह इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान के सिद्ध योगी अपने आप कितने ही समय से आत्मा में अनुभव करता है।

भावार्थ यह है कि ज्ञान सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ है। मोक्ष होगा तो ज्ञान से होगा। अगर मोह दूर होगा तो ज्ञान से ही होगा। और अगर संशय दूर होगा तो ज्ञान से ही होगा। मन में शान्ति व स्थिरता मिलेगी तो ज्ञान से ही मिलेगी। इसलिए प्रथम ज्ञान प्राप्त करो, फिर यदि जीवन रहे, श्वांस रहे तो परोपकार करो, सेवा करो, संत कर्म करो शुभेच्छा करो। बाल्मीकि ने रामायण में कहा है कि जिस समय राजा बालि मारा गया तो तारा रो रही थी। उसे श्रीराम के दर्शन हो रहे थे। अगर राम के दर्शन से तारा का दुःख दूर हो जाता तो तारा रोती ही क्यों?

चौ0 – तारा विकल देख रघुराया,
दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया।
छित जल पावक गगन समीरा,
पंच तत्व यह अधम शरीरा।

श्री रामेंणोदितो सर्वम् त्यक्त्वा न त्वा रघुत्तमः।
देह अभिमानजं शोकम् त्यक्तवानत्वा रघुत्तमः।।

चौ0– उपजा ज्ञान चरण तब लागी,
लीन्हेसि परम भक्ति वर मांगी।

तारा ने राम को प्रणाम किया, क्योंकि वह झूठे स्वप्न के नाते में पड़ी थी।

चौ0– प्रगट सो तनु तव आगे सेवा,
जीव नित्य किहिं कारण रोवां।

यही ज्ञान जब नारद जी दुखी थे तब सनत्कुमार ने दिया है –

यो वै भूमा तत्सुखम् नान्ये सुखमस्ति। यदल्पंत्वदं मर्त्यम्।

अर्थ – जो अनादि सुख ब्रह्मानन्द में है वह अन्यत्र नहीं, सांसारिक सुख अल्प है, नाशवान् है।

फिर नारद जी ने यही ज्ञान खद्वांग को दिया था और दो घड़ी में उनकी मुक्ति हुई थी। जब

महर्षि शमीक मुनि के गले में राजा परीक्षित ने मरा सांप डाला था तो श्रृंगी ऋषि ने श्राप दे दिया था, कि आज से सातवें दिन तक्षक सर्प के डसने से दुष्ट राजा परीक्षित की मृत्यु होगी।

तब शुकदेव जी महाराज ने राजा परीक्षित को यही ज्ञान दिया कि –

अहम् ब्रह्म परमम् धामं, ब्रह्माहं परमम् पदम्।
एवं समीक्षान्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कलैः।। **श्लोक भागवत।**

अर्थ – परम धाम जो है सो मैं आत्मा हूं और जो आत्मा है वही परब्रह्म है। आत्मा निराकार है, वही तेरा स्वरूप है।

अष्टाबक्र गीता में भी लिखा है –

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्य पापे विशीर्णे।
माया मोहौ क्षयमुपगतौ, नष्ट सन्देह बृतौ।
शब्दातीतम् त्रिगुणरहितौ, प्राप्य तत्वावबोधम्।
त्रिगुणातीतं पथ विचरतौ, तत्र को विधिः कः निषेधः।।

अर्थ– जाग्रत, स्वप्न में संसार का भेद है, सुषुप्ति में अभेद है। जाग्रत व स्वप्न में जगत का भाव है सुषुप्ति में अभाव है। जो ज्ञानी महापुरूष इन भावों से रहित भावातीतपद से स्थित है उसके लिए क्या विधि क्या निषेध है।

न तत्त्व वचनं सत्यं नातत्व वचनं मृषा।
यदभूत हितमत्येन्तमेतत सत्यं मतम् मम।।

अब विचार यह करना है कि द्वैत की अपेक्षा अद्वैत है और अपना स्वरूप निरपेक्ष है। अमात्र है, शब्द रहित है स्वर व्यंजन रहित है और नाद बिन्दु कालातीत स्वयं अपना आप है। इससे द्वैत अद्वैत का हठ नहीं करना चाहिए। न द्वैतवादी बनाना न अद्वैतवादी बनना। क्योंकि जो बनेगा वह बिगड़ेगा। जैसे कहा है कि कर्मों के द्वारा जो लोक निर्माण होगा वह एक न एक दिन नष्ट होगा।

तेरी स्वाँसा मणी अनमोल लुट गई मूढ़ मते।
काहे गहरी नींद में सोवे देख तो आंखे खोल। लुट गई,
मोह मदादि ठगों ने घर की खोल दई पोल। लुट गई,
गस्ती देख संत विचरत है जाय उन्हीं से बोल।। लुट गई,
राख रही विज्ञान अभी तू ज्ञान गलिन में डोल। लुट गई।

– श्रीमती रूकमणी शर्मा
मथुरा

1. जो लोग तुम पर भरोसा करते हैं उन्हें कभी भी धोखा न दो।
2. भाग्य केवल निडर व्यक्तियों का साथ देता है।
3. जिंदगी में अच्छे लोगों की तलाश मत करो, खुद अच्छे बन जाओ शायद किसी की तलाश पूरी हो जाए।
4. Everything is easy, when you are CRAZY about it. And nothing is easy, when you are LAZY about it.

संकलनकर्ता – पंकज मिश्रा, झांसी

।। शिवोऽहम।।

दोहा :— दुख की दाता देह हैं, देही सुख स्वरूप। देही देह में रमरहयो, तासें पड़ोभवकूप।।

सुख में भ्यात् दुःख में माभूत

इस प्रकार सुख के प्रति आनन्द के प्रति सबका आकर्षण होता है और श्रीकृष्ण के जीवन में उसकी अभिव्यक्ति बहुत अधिक है इसलिए वे लोगों के प्रीति को, आशक्ति को अपनी ओर खींचते हैं। क्योंकि जहाँ सुख होता है वहाँ मन जाता है इसलिए हम देखते हैं यद्यपि महाप्रभु चैतन्य देव और महाप्रभु वल्लभाचार्य दोनों अनेक विषयों में परस्पर मतभेद रखते हैं परन्तु श्रीकृष्ण में जो अशक्ति है प्रीति है उसके सम्बन्ध में उनका कोई मतभेद नहीं है। वे कहते हैं कि भगवान का श्रीकृष्ण रूप में जो प्रकाट्य है, अभिव्यक्ति है अवतरण है — यह स्वशक्ति उत्पादन द्वारा प्रपंच विसमर्णाथ है। अब हम श्रीकृष्ण लीला की कुछ चर्चा करते हैं। यह जो आनन्द प्रधान लीला है, भगवान की वह सभी जीवों को सुख देने वाली है। तत्व ज्ञानी महापुरूष उसका गान करने में आनन्द लेते हैं। हृदय में जो प्रेम है, रस है, उसकी बोली का नाम संगीत है। जब हम प्रेम से बोलते हैं तब उसका नाम संगीत हो जाता है, ये प्रेम के अनुभाव है। आँख से प्रकट होते हैं, हाथ से प्रकट होते हैं, बुद्धि से प्रकट होते हैं, कमर से प्रकट होते हैं और पैरों से प्रकट होते हैं। प्रेम इन सबमें स्वर ला देता है, ताल ला देता है, लय ला देता है यह प्रेम जिसमें फूटता है उसमें एक प्रकार की मधुरता का संचार कर देता है। वास्तव में प्रेम ही सौरभ्य है, सुगंध है, और प्रेम ही सौरस्य है, मिठास है प्रेम ही सौन्दर्य है, प्रेम ही सौकुमार्य है और प्रेम ही सौस्वर्य है, संगीत है। प्रेम हमारी सब इन्द्रियों को अपनी ओर खींच लेता है। हमारे जीवन में एक बार भगवद्रस आ जाये तो क्या है। यह आप गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में सुनिये।

चौपाई :— रामहि केवल प्रेम प्यारा, जान लेय जो जान निहारा।।

जो मोहि राम लागते मीठे तौ नवरस, षटरस, अनरस रस है जाते सब सीठे।।

इसी से जीवन मुक्त पुरूष जिन्हें कोई तृष्णा नहीं है इसका गान करते हैं, स्वयं भगवान के पास बैठकर जो मुमुक्षु पुरूष हैं, उनके लिये यह संसार रूप रोग की औषधि है। औषधि क्या होती है — ''औषति दोषान धत्ते गुणान्'' जो हमारे दोषों की मिटा दे और हमारे जीवन में सद्गुण का आध ाान करें, इसका नाम औषधि है।

जो लोग इन्द्रियों का जीवन जी रहे है। उनके लिये भी श्री मनोभिरामात कान से सुनने में भी आनन्दमयी और मन से विचार करने में आनन्ददायी है। जब हम श्रीमद् भागवत में यह श्लोक पढ़ते हैं तब पढ़ने में भी कितना आनन्द आता है — कृष्ण—कृष्ण—कृष्ण रस वर्षो बादलों का समूह और उसमे कोंधती हुयी बिजली केनोपनिषद में ध्यान की यह उपासना बतायी हुई है कि विद्यतो व्यद्युतत् (केन. 4—4) इस प्रकार का ध्यान करो कि रस वर्षो घन घटा छायी हुयी है अपने हृदय में और उसमें जैसे बारम्बार बिजली कोंध जाती है वैसे ही प्रकाश आ जाता है। ठीक यही उपमा देकर श्रीमद् भागवत में रास के प्रसंग का वर्णन है।

।। भजन।।

टेक — आतम कृष्ण मुरारी बृज रूपी तन में।

अ0 1 इन्द्रिय गोपी संग में जिनके बुद्धि है राधा प्यारी —बृजरूपी तन में।

2 मन मनसुखा को संग में लेकर, ज्ञान की रास सम्हारी बृज रूपी तन में।

3. सीऽहम् धुन की मुरली बजाकर, मोह लिये नर—नारी बृज रूपी तन में।

4. ए सब खेल भयो घट भीतर, आयहि खेल खिलाड़ी — बृज रूपी तन में।

5. विज्ञानानन्द मगन भये हैं, आपहि आप विचारी — बृज रूपी तन में।

आतम कृष्ण मुरारी बृज रूपी तन में।

— स्वामी पूर्णानन्द जी

हरिद्वार

'अपने को पहचानें'

यह संसार नाम रूपात्मक है। यहाँ व्यक्ति की पहचान नाम, रूप, जाति, धर्म से होती है। स्थान से भी पहचान की जाती है भारतीय, चीनी, अमरीकी आदि। व्यक्ति एक देशीय होता है। किसी का परिचय उक्त बिन्दुओं पर ही निर्भर है। जब कोई किसी से पूछता है कि आपका परिचय क्या है, तब उत्तर में मेरा अमुक नाम है, मेरे माता–पिता अमुक हैं। मैं अमुक जाति–धर्म से सम्बन्धित हूँ। भारतीय हूँ आदि उत्तर प्राप्त होते हैं और सम्बन्धित व्यक्ति का परिचय प्राप्त हो जाता है।

क्या हमारा यह वास्तविक परिचय है? यह संसार ही नाशवान, क्षण–क्षण परिवर्तन शील है। यहाँ तक कि हमारा बचपन चला गया, जवानी भी नहीं रही। जरा भी गई और जिस शरीर को आधार बनाकर हमारा परिचय प्राप्त हो रहा था एक दिन वह भी साथ छोड़ गया, तब यह नाम रूप आदि हमारा परिचय कैसे हो सकता है।

यह संसार ही स्वप्नवत् है, मिथ्या है, तब इसकी वस्तुवे प्राणी कैसे वास्तविक हो सकते हैं। 'ब्रह्म सत्यम जगन्मिथ्या' वेदान्त का मत है। इसके सत्यवत भोसने का कारण पता लगाया गया है। इसके पीछे अविनाशी सच्चिदानन्द ब्रह्म व्याप्त है। वह सर्वदेशीय है। यही कारण है कि संसार के असत् पदार्थ सत्यवत् भासते हैं। यह विश्व ब्रह्म का विवर्त मात्र है। ब्रह्म की उपस्थिति से ही सकल वस्तुएँ सत्य जैसी प्रतीत होती है :–

'यत्सत्त्वाद भाति सकलं रज्जौ यथा हे 'र्भ्रमः' जिस प्रकार रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार हम इस शरीर को 'मैं' मान बैठे है। आद्य शंकराचार्य इस प्रकार इसे स्पष्ट कर हमें वास्तविक पहचान का बोध कराना चाहते हैं।

''कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का में जननी का मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं व्यक्त्वा स्वप्नविचारम्''

अर्थात स्वप्नवत् मिथ्या संसार की आस्था छोड़कर तू कौन है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरी माता कौन है और पिता कौन है – इस प्रकार सब को असार समझ।

परमात्मा अविनाशी, शाश्वत् है। हमारी देह के हृदय प्रदेश में विद्यमान है। इसी कारण यह जड़ देह चेतन व क्रियाशील है। वही हमारा पिता–माता है। उसी के लोक से हमारा आना हुआ है। हम उस अमर की संतान (अंश) हैं।

ममैवांशो जीव लोके जीवभूतो सनातनः – गीता ईश्वर अंश जीव अनिनाशी।
चेतन अमल सहज सुखरोसी। (रामचरित मानस)

मानव देह पंच महाभूतों – वायु, आकाश, जल, पृथ्वी तथा तेज (अग्नि) से निर्मित है। ये जड़ हैं, अस्तु देह भी जड़ है। इसमें जीवात्मा (ब्रह्म का अंश) विद्यमान होने से यह चेतन, प्रकाशमय, स्फूर्त, क्रियाशील है। यह परमात्मा के लक्षण है। शरीर और चेतन तत्त्व का यह मिश्रण मानव देह है। इसके दो विभाग है – देह और देही।

देह तथा देही की ग्रन्थि बड़ी दृढ़ हो गई है। इसका खुलना बहुत कठिन है। इस ग्रंथि के कारण देह तथा देही का दृढ़ ज्ञान (शब्द ज्ञान नहीं, अनुभूति ज्ञान) हो जाना ही इस ग्रंथि का खुल जाना है। परिणाम जन्म–मरण का चक्र समाप्त होकर मुक्ति प्राप्त होना है। इस स्थिति में यह भली प्रकार समझ में आ जाता है कि ''मैं'' कौन है अर्थात मैं नामधारी व्यक्ति नहीं है, मैं संसारी माता–पिता

का पुत्र नहीं हूँ। अपितु 'मैं' उस अविनाशी पिता का अंश हूँ, जो सर्वत्र व्यप्ति है, सत्–चित् आनन्द स्वरूप है। यह एक देशीय नहीं है। उसके धाम से ही मैं आया हूँ।

भगवान शंकराचार्य के शब्दों में –

'न मृत्युर्नशंका न में जाति भेदः
पिता नैव में नैव माता च जन्मः।
न बन्धुर्न मित्रं, गुरूर्नेव शिष्यः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।

यह ज्ञान होने पर ज्ञात हो जाता है कि नाम, रूप, जाति भेद आदि काल्पनिक हैं। ये हमारे परिचय नहीं। हम नाम रूप रहित हैं यह संसार रंगमंच है। इस पर अभिनय हो रहे है। हम भी एक अभिनेता हैं। अभिनेता का वास्तविक परिचय कुछ और होता है। यह अभिनम किसी और का करता है। जैसे – मोहन, हरिश्चन्द्र नाटक में हरिश्चन्द्र की भूमिका मे मंच पर अभिनय करे। वास्तव में यह मोहन है हरिश्चन्द्र नहीं। इसी प्रकार मनुष्य परमात्मा का चेतन स्वरूप ही है। वह इस सम्बन्ध को विस्मृत हो गया है। यही मानव जीवन की विपत्ति है। इसे दूर करने का काम कोई बुद्ध पुरूष – सद्गुरू करे तो तत्व बोध संभव है। जिस प्रकार गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन के लिए किया उसी प्रकार भाग्य वश मुमुक्ष को कोई सद्गुरू प्राप्त हो जाये, तो जड़ चिद ग्रंथि खुल सके और स्वरूप का बोध हो। अर्जुन ने गीता में कहा है –

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'

यदि भाग्यवश भगवान की कृपा हो जाये तो भी अपने स्वरूप का ज्ञान भक्त को हो सकता है और प्रभु पर भक्त और भगवान में अभेद सिद्ध हो जाता है। इसे अभेद भक्ति कहते हैं।

– पं0 चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष – मानस समाज
सीपरी बाजार, झांसी

यदि हमारे जीवन में भी ये घटना घट जाये। हम अपने अहंकार तुच्छ बुद्धि को किसी सद्गुरू के चरण कमलों में समर्पित कर देवें, उनके शासन को स्वीकार कर लेवें, तो जीवन धन्य हो जायेगा। भगवान श्रीराम पुरजन गीता के प्रसंग में इसी को ''दुर्लभ साज सुलभ करि पावा'' कहते हैं। सर्वप्रथम तो मनुष्य जनम ही दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ आध्यात्मिक साधक या भक्त बनना है, इतना होने पर भी इस भव सागर को पार करने के लिए कर्णधार – मार्गदर्शक के रूप में सद्गुरू का अवतरण अत्यन्त ही दुर्लभ है। बिना सद्गुरू के अवतरण के अन्य उपलब्धियां हमें जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं करा सकती है।

परमात्मा की कृपा से हम सभी के जीवन में ये दुर्लभतम संयोग बने, जिससे हमारा जीवन धन्य बने और कृतज्ञता स्वरूप हमारे हृदय से भी ये स्वर्णिम उद्गार प्रकट होवे।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

– ब्रह्मचारी राघवेन्द्र
चिन्मय मिशन, झांसी

''आत्म दर्शन''

यस्तु सर्वाणी भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों को, परमात्मा में ही निरंतर देखता है और सम्पूर्ण प्राणियों में परमात्मा को देखता है, वह कभी किसी से भी घृणा नहीं करता।

सबका आत्मरूप परमपुरूष समस्त प्राणियों में रहता है। परमतत्त्व को जानने पर बुद्धि समष्टिरूप विश्व को चेतनस्वरूप जान लेती है। ऐसा जान लेने पर फिर राग द्वेष किससे ? अर्थात् किसी से भी नहीं होता। सब उसी ब्रह्म चेतन के प्रकाश से ही प्रकाशित है और उसी में सबका — सब लय हो जाता है। वह अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगंध तथा अविनाशी, नित्य, अनादि, अनन्त है जिसमें कोई संकल्प — विकल्प नहीं है, सारी—की—सारी रचना सूक्ष्म शरीर में शेष रही वासनाओं से ही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त होकर महत्तत्त्व में आती है और महन्तत्त्व से अहंतत्त्व एवं अहंतत्त्व से पंचतत्त्व, पंच तन्मात्राओं के साथ पंचभूत से जगत् रचना में दिखायी देती है। किन्तु सारा बाहर—भीतर का जगत् उन एक ही परमात्मा से ही व्याप्त होने से सब कुछ परमात्मस्वरूप ही है, परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।

परमतत्त्व का ज्ञान शुद्धमन से ब्रह्मनिष्ठ गुरू के सानिध्य में श्रृद्धा भाव से जाने पर होता है और जान लेते हैं कि एक मात्र पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है।

संसार में विभिन्न कामनाओं — मोह, अहंकार एवं आसक्ति के वशीभूत होकर हम परमतत्त्व के नित्य, सर्वत्र होते हुए भी उसे नहीं जान पाते। हम परमतत्त्व को तभी जान सकते हैं जब हम कामनाओं, मोह, अहंकार एवं आसक्ति चारों स्थितियों से असंग हो जाते हैं। परब्रह्म को न तो बुद्धि, न मन और न ही इन्द्रियाँ जान सकती हैं क्योंकि सबको प्रकाशित करनेवाला तो परब्रह्म परमात्मा ही है। उसको जानने के लिए शरीर के सारे व्यवहारिक कार्य, धर्म करते हुए संसार से असंग होना आवश्यक है।

अहंकार एवं कामनाओं की निवृत्ति सहज नहीं है। अहंकार अपने अस्तित्व को पुष्ट करने वाली विभिन्न स्थितियों में जोर मारता रहता है। इनकी निवृत्ति के लिए परमतत्त्व को अपनी आत्मा के रूप में जानना ही मुख्य समाधान है।

जब हम गुरू के सानिध्य में संसार से परावृत (पलटना) होकर विचार करते हैं तब हम देखते हैं कि संसार को जानने के लिए इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों को मन से जानते हैं, मन की स्थिति बुद्धि के द्वारा जानी जाती है। लेकिन जो बुद्धि का प्रकाशक है, वह हमारा आपा है। आपा जिसे हम आत्मा कहते हैं और उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरूष हो अथवा नपुंसक हो ''मैं'' कहता है। वही मन, बुद्धि आदि सहित इन्द्रियों के माध्यम से सबका जानने वाला विश्वरूप आत्मा है। समष्टि का प्रकाशक होने से पुरूषोत्तम विराट परमात्मा आदि नामों से जाना जाता है। जब तक हमारी दृष्टि समस्त विश्व में उसी एक चेतन परमात्मा का दर्शन नहीं करती तब तक जीवन में परमतत्त्व का ज्ञान हमारी दृष्टि में न आने के कारण अपूर्णता की स्थिति बनी रहती है।

विश्व को परमात्मा के रूप में देखना ही ईश्वर का दर्शन है। वह ईश्वर अकर्ता, अभोक्ता है और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी को प्रकाशित करता हुआ उससे अलिप्त रहता है उसी प्रकार सब कुछ परमात्मा से प्रकाशित होते हुए भी परमात्मा उससे अलिप्त है।

— प्रमोद कुमार गुप्ता
(झांसी) उ0प्र0

ॐ तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः

हमारे उपनिषदों में चार महाकाव्यों द्वारा जीवन के लक्ष्य को पाने की प्रक्रिया का निर्देश किया गया है। यद्यपि उपनिषदों में अनेक महाकाव्य है, तथापि ये चार अति प्रसिद्ध हैं – प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय उपनिषद), आयमात्मा ब्रह्म (वृहदारण्यक उप.) तत्त्वमसि (छान्दोग्य उप.), तथा अहं ब्रह्मास्मि (वृहदारण्यक उप.) सामान्य मनुष्य को जीव व जगत की सत्ता समझ में आती है। किन्तु विचारशील मनुष्य जीव व जगत के साथ ईश्वर की भी सत्ता स्वीकार करता है। वह स्वंय ''जीव'' है, जिससे वह व्यवहार करता है, वह जगत है तथा इन दोनों (जीव व जगत) का नियमानुसार संचालन करने वाला ईश्वर है। साधक मनुष्य को ईश्वर (तत) और जीव (त्वं) द्वैत रूप से तो समझ में आते है।, किन्तु इनमें अभेद अद्वैत दर्शन उसे नहीं होता है। जब साधक गहन साधना में शास्त्र रूपी नौका पर आरूढ होकर प्रवेश करता है तो अद्वैत रूपी परम ज्ञान से उसका परिचय होता है, किन्तु स्पष्टता नहीं। बस यही एक साधक के जीवन में गुरू का प्रकट स्थल है। शास्त्रों में इन्हें सद्‌गुरू कहते हैं, जो साधक की इस ग्रन्थि को खोल देते है, उसके द्वैत भाव का भेदन कर देते हैं।

हमारे जीवन में सद्‌गुरू का अवतरण एक क्रान्ति है। गुरू अवतरण व उनकी कृपा बिना जीवन निरर्थक होता है, यदि ऐसा कहे तो भी ये अतिशयोक्ति नहीं होगा। क्योंकि गुरू के मार्गदर्शन बिना आत्म रूप में स्थित परमात्मा में एकत्व दर्शन होना दुसाध्य है।

यहाँ ध्यातव्य यह है कि एकत्व दर्शन होना दुसाध्य है का एक पहलू है। यद्यपि ये परम कृपा का ही परिणाम है तथापि इस प्रक्रिया का दूसरा पहलू भी उतना ही अनिवार्य है। वह है – गुरू को अपने पर शासन करने का अधिकार देना। अर्जुन श्री कृष्ण के साथ वाल्यावस्था से ही बन्धु मित्र के रूप में थे। किन्तु युद्ध क्षेत्र का वह क्षण जब उनके मुख से यो स्वर्णवाकय प्रकट हुए।

''कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढ़चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (2/7)

यह वह सर्वश्रेष्ठ काल था, जब उन्होंने स्वयं को शिष्य रूप में प्रस्तुत कर भगवान को अपने पर शासन करने का निवेदन किया। तभी भगवान का सद्‌गुरू रूप में अवतरण हुआ और इस धरा धाम पर सभी उपनिषदों के साररूपी परम पावन श्रीमद् भगवद् गीता का प्रकटन हुआ।

ॐ

जब से गुरू चरणों में आया, हो गया निहाल।
पहले तो कंगाल था, अब होगया मालोमाल।।
अज्ञान से भरीथी मति, जब किया प्रणिपात।
गुरू नख ने किया कर्षण, हर लिया अज्ञान ।।1।।
चिन्ता में डूबा रहता था, मेरा मन निरन्तर
करने लगा है अब चिन्तन, आभ्यन्तर ही आभ्यन्तर।।2।।
लौकिक भोगों में अब मन, लगता नहीं है मेरा।
स्वचिन्तन से अब ध्यान, हटता नहीं है मेरा।।3।।
गुरू की प्रेरणा शास्त्र का प्रमाण।
इन दोनों से मिलकर हुआ आत्म ज्ञान।।4।।
देकर ज्ञान परम पावन, जस गये विमान।
नमन उन्हें बारम्बार, गुरू थे वो महान।। 5।।

– ब्रह्मचारी राघवेन्द्र
चिन्मय मिशन, झांसी

उत्कृष्ट विचारों का सतत् सानिध्य

शब्दब्रह्म रूपी कमल आचरण व साधना की उर्वरा भूमि पर ही खिलता है। आचरण की सभ्यता व मौलिकता इसकी दीर्घजीविता का मूल है। शब्दों के संयोग से विचार बनते है। विचारों का व्यक्ति के जीवन से गहरा संबंध है। कोई व्यक्ति चाहे या न चाहे, विचार उसके मन–मस्तिष्क में आते रहते हैं। विचार व्यक्ति की प्रवृत्ति के अनुसार आते हैं। विचार ही हैं, जो व्यक्ति को निठल्ला बना देते हैं।

विचार नश्वर होते हैं, यानी वे उत्पन्न होते है और शीघ्र नष्ट भी हो जाते हैं, बशर्ते हम उन्हें अपनी मुट्ठी में कैद न करें। क्योंकि विचार मुट्ठी में कैद होते ही उत्पादक हो जाते हैं विचारों को मुट्ठी में कैद करने से मतलब है – विचारों को पकड़ लेना और उस पर अमल करना। अफ्रीकी लेखिका – ऐलिस बॉकर विचारों के सम्बन्ध में यही कहती है कि विद्वता कुछ और नहीं अपने विचारों को पकड़ने और उनके दोहन की काबिलियत का नाम है।

खेत में जिस प्रकार का बीज बोया जायेगा उसी प्रकार के पैधे उगेंगे और वैसी ही फसल पैदा हीगी। किसान जो फसल उगाना चाहता है उसी के अनुरूप वह खेत तैयार करता है। ऋतु देखता है और उसी प्रकार के बीज की व्यवस्था करता है। साथ में ध्यान रखता है कि बीज अच्छी किस्म का हो, सड़ा, घुना, पुराना, छोटा या कमजोर तो नहीं, अन्यथा फसल उत्तम श्रेणी की नहीं होगी।

इसी प्रकार जीवन एक खेत है। उसमें अच्छे विचारों को ग्रहण करना चाहिए उनकी देख–भाल करनी चाहिए, उन्हें पुष्पित– पल्लवित करना चाहिए। उसमें प्रगति और सफलता की फसल उगाई जानी है तो ऐसे विचारों को मनःक्षेत्र में आरोपण करना चाहिए जो प्रगति के लिए आवश्यक शक्ति का उद्भव कर सके। साहस और पुरूषार्थ के बिना किसी का आगे बढ़ सकना संभव नहीं है। उनसे वह हासिल करना जो मानवता के लिए जरूरी है। सफल वे ही हुए है जिन्होंने किसी एक विचार को अपना लक्ष्य चुना है और उस लक्ष्य तक पहुँच कर दिखाया है।

आलस्य और अनियमितता का अवरोध रहते कोई व्यक्ति किसी प्रयोजन में सफल नहीं हो सकता। इन दुर्बलताओं को हटाने के लिए खेत में उग आये अनावश्यक पेड़–पौधे और खरपतवार उखाड़ने – जोतने की तरह हमें किसान का अनुकरण करना होगा।

विचार बीज है। जीवन का स्वरूप उसी की लहराती हुई हरी–भरी फसल है। आशा है कि अन्न की राशि मनःक्षेत्र में किन विचारों को स्थान मिले इसके लिए अत्यधिक सतर्कता की आवश्यकता है। बीज की ओर से उपेक्षा बरतने वाला किसान अभीष्ट फसल काटने में सफल मनोरथ कैसे होगा?

प्रगति के लिए प्रयास बहुत किये जाते हैं पर यह भुला दिया जाता है कि निर्धारित दिशा में प्रेरणा देने वाले और पथ प्रशस्त करने वाले समर्थ विचारों की अभीष्ट मात्रा संकलित कर ली गई या नहीं।

विचार सकारात्मक और नकारात्मक हो सकते हैं। सकारात्मक विचारों का संबंध शुभ भावनाओं से और नकारात्मक विचारों का संबंध अशुभ भावनाओं से होता है। विचारों को ग्रहण करते ही हमारी शुभ और अशुभ भावनायें इनसे जुड़ जाती हैं और वे विचार हमें प्रभावित करने लगते हैं। व्यक्ति के अन्दर विचार करने, सोचने, महसूस करने और विचारों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। यदि व्यक्ति अपने विचारों का कुशल प्रबंधन करना सीख लें, तो वह अपनी चेतना के नए आयामों में प्रवेश कर सकता है। लेकिन इसके लिए बहुत सचेत रहने की आवश्यकता है। अधिकांश लोग अपने विचारों को भटकने और बिखरने के लिए छोड़ देते हैं।

वैयक्तिक दोष, दुर्गुणों की कंटीली झाड़ियाँ प्रगति के पथ को अवरूद्ध और दुरूह बनाती है। यह दुर्गुण और कुछ नहीं उन विचारों के प्रतीक प्रतिनिधि हैं, जिन्हें बहुत समय से ज्ञात या अज्ञात रूप में मनः क्षेत्र में संजोए जमाएं रखा गया है।

अनियंत्रित विचार उस तेज गाड़ी की तरह होते हैं, जिस पर यदि ब्रेक न लगाया जाए तो दुर्घटना घट सकती है। जिनके विचार अनियंत्रित होते हैं, वे मानसिक रूप से विक्षिप्त होते हैं या हो जाते हैं। विक्षिप्त व्यक्तियों के विचार अस्पष्ट होते हैं। इसीलिए वे अपने विचार न तो किसी से स्पष्ट रूप से कह पाते हैं और न ही दूसरों के विचारों को समझ पाते हैं। इसके विपरीत जो महामानव होते हैं, जिनका मस्तिष्क परिपक्व होता है, जिनका मन उन्नत होता है, उनके विचार बहुत स्पष्ट और सुव्यवस्थित होते है। उनके हर विचार का दूसरे विचार से गहरा संबंध होता है।

विष की एक बूंद भी शरीर से रक्त में प्रवेश करते ही सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है और अपना असर दिखाते हुए व्यक्ति को मरणासन्न अवस्था में पहुँचा देता है। इसी प्रकार कुविचार सर्प–दंश की तरह है। वे अपना विस्तार करके दोष दुर्गुणों के रूप में फैल जाते है। हमारे आंतरिक शत्रु मनोविार बाहर के शस्त्रधारी शत्रुओं की अपेक्षा हजार गुने अधिक बलिष्ठ और घातक होते हैं आस्तीन के साँप की तरह वे सदा विघातक ही सिद्ध होते है।

विशेषज्ञों का मानना है कि ज्यादा सोचना बहुत ज्यादा खाने के समान है। जिस प्रकार ज्यादा खाना हमारे पेट को खराब करता है उसी प्रकार अनावश्यक ज्यादा सोचने से मनः स्थिति बिगड़ती है, मन व शरीर भारी हो जाता है। यदि थोड़े ही विचारों को गहराई से सोचा जाये तो इसे मनन कहते हैं। यह एक प्रकार की जुगाली है, जो विचारों को पचाने और उन्हें आत्मसात् करने में हमारी मदद करती है।

क्षयग्रस्त दुर्बल और मरणासन्न शरीर वस्तुतः उस रोग के विषाणुओं का ही खाया हुआ होता है। जैसे दीमक, घुन, चुपचाप लकड़ी को अन्दर से खोखला कर देती है। घुन, चावल, गेहूँ को अन्दर से खा लेता है। उसी प्रकार कुविचार विषाणुओं से अधिक घातक और घुन से अधिक अदृश्य होते हैं। वे भीतर जमकर बैठ जाते हैं और गुण, अकर्म, स्वभाव की सारी संपदा को खोखली और विषाक्त बना देते हैं। आदर्श विचारों में ही व्यक्ति की आत्मा का बिंब प्रतिबिंबित होता है।

''शब्द मुफ्त में मिलते है।''

लेकिन

उनके चयन पर ''निर्भर'' करता है कि उनकी 'कीमत' मिलेगी या 'चुकानी' पड़ेगी।

सफलता हमेशा अच्छे विचारों से आती है। अच्छे विचारों की उत्पत्ति अच्छे लोगों के सम्पर्क से ही होती है।

हमारे यहाँ धर्मग्रन्थों, साहित्यों, साधु पुरूषों के प्रवचनों में सुविचार की भरमार है। लेकिन उनका महत्व हमारे ऊपर तब तक नहीं है जब तक हम स्वयं उन विचारों को आत्मसात् नहीं करते तब तक वे हमारे मन मस्तिष्क पर जड़े नहीं जमा सकते। एक बार यदि वे हमारे जीवन का अंग बन जाये, उसी दृष्टिकोण से विचारधारा को प्रभावित करे मन में भी सदैव सद् विचारध ाारा की धारा कलकल की ध्वनि के साथ सदैव वहे, हर परिस्थिति में तो हमारे जीवन की दशा ही बदल जायेगी।

'स्वीकार करने की हिम्मत और सुधार करने की नियत हो तो इंसान बहुत कुछ सीख सकता है।' हमको कितने लोग पहचानते हैं? सइका महत्व नहीं, मगर क्यों पहचानते है? इसका महत्व है।''

– डॉ0 रंजना शर्मा

नोयडा, दिल्ली

जीवन की परिभाषा

जीवन क्या है? उसके स्वरूप को समझा जाना चाहिए उससे जुड़े तथ्यों को स्वीकार किया जाना चाहिए भले ही वे कठोर और अप्रिय हों। जीवन एक चुनौती है एक संग्राम है एक जोखिम है एवं इसी रूप में इसे स्वीकारने के अलावा कोई चारा भी नहीं है। जीवन एक रहस्य है। गंभीरता विवेकशीलता एवं सतर्कता के साथ ही इसकी तह तक पहुंचा जा सकता है। जीवन कर्तव्य के रूप में भली परन्तु हंसाने वाला हल्का फुल्का रंगमंच भी है।

जीवन एक गीत है जिसे पंचमसुर में गाया भी जा सकता है जीवन एक अवसर है जिसे गंवा देने पर सब कुछ गुम हो सकता है जीवन एक यात्रा है, कला है एक प्रतिज्ञा है इसे कैसे सफल बनाया जा सकता है जिसने इस तथ्य को समझ लिया वही सच्चा रत्न पारखी एवं विवेकवान है।

मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति

येषां न विद्या न तपो न दानम्
ज्ञानं न शीलम् न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

वास्तव में पृथ्वी लोक में मानव का जन्म लेने के उपरान्त भी जिस व्यक्ति के पास न विद्या है न तप का बल है, न ही दानशीलता जैसे सद्गुण है, न ही उचित–अनुचित, ग्राह्य–त्याज्य का ज्ञान है, न ही अच्छे आचरण का आभूषण है एवं न ही मानवोचित गुणों का श्रृंगार है तथ न ही जिस मानव में धर्म के प्रति आस्था या विश्वास है। वह मनुष्य यथार्थ में इस मृत्युलोक में केवल और केवल पृथ्वी के ऊपर भार स्वरूप में अपने जीवन में वह मनुष्य के रूप में जानवरों की तरह इस संसार में घास–फूस चर रहा है।

स्वार्थ परता, वैमनस्यता उवं प्रतिस्पर्धा के कारण आज हर मनुष्य के हजारों शत्रु है जो उसे सरल जीवन व्यतीत नहीं करने देते। दूसरी ओर मनुष्य ने स्वयं भी आज अपने आन्तरिक शत्रुओं को बढ़ावा दे रखा है उस के ये आन्तरिक शत्रु है।

काम, क्रोध लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या और द्वेष मानवजाति के अवगुण उसके शत्रु बनकर मानव के विवेक को नष्ट कर देते हैं जिससे अधिकांशतः मनुष्य उचित एवं अनुचित कार्य के अन्तर को समझने में असमर्थ हो जाता है। ये अवगुण मानव को अपनी आगोश में लेकर उसे तमोगुणी मानसिकता में धकेल देते हैं। इस विकृत मानसिकता के वशीभूत होकर मनुष्य किसी भी बुरे कार्य को करने में भयभीत नहीं होता। ये जानते हुये कि हम अपने कर्मों से ही अपना भविष्य लिखते हैं वे किसी भी अपकृत कार्य को करने में तत्पर रहते हैं।

काम वासना मानवता का प्रथम घातक शत्रु है। दृष्टान्तः काम वासना में लिप्तता के कारण अपने उन्मादी क्षणों में कामी पुरूष किसी भी रिश्ते में विश्वास नहीं रख पाता। उसे स्त्री केवल और केवल उपभोग की वस्तु मात्र नजर आती है। सामाजिक दायित्वों एवं मर्यादाओं से परे वह माँ बहन बेटी वधू सभी मे मात्र स्त्रियोचित वासना को ही देखता है, और घृणित से घृणित कार्य करने को तत्पर हो जाता है।

मानव का दूसरा शत्रु है क्रोध। क्रोध एक ऐसी विकृत मानसिक स्थिति है जो मनुष्य को पशु बना देती है। उग्रता के क्षणों में उसकी मानसिक उत्तेजना उसे शत्रुता एवं हिंसा तक ले जाती है। जहाँ उसे अपने आप पर अपनी क्रियाओं पर यहाँ तक कि अपनी जिव्हा पर भी काबू नहीं रहता एवं उद्विग्न होकर वह नीच से नीच कर्म करने को तत्पर हो जाता है। क्रोध की स्थिति में मनुष्य का मस्तिष्क उसकी कर्मेन्द्रियां व ज्ञानेन्द्रियों दोनों पर सन्तुलन नहीं रख पाता एवं मनुष्य का अधोपतन कर डालता है।

मनुष्य की लोभी–प्रवृत्ति उसका अगला शत्रु है लोभ मोह में जन्म लेता है ये दोनो दुष्प्रवृत्तियां एक दूसरे पर आश्रित हैं। समाज में मनुष्य मैं और मेरा इसी घृणित आवेश में घिर कर संसार के हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व चाहता है। यही मोह है। परिवार उसके सदस्य एवं चल अचल सम्पत्तियों में अपना अधिकार उसके मोह के परिलक्षित करता है एवं इसी की प्राप्ति में हर जगह दूसरे से स्वयं को अच्छा दिखाना उसे लोभ की ओर आकर्षित करता है। मनुष्य की जिज्ञासाएं कभी शान्त नहीं

होती। इन्हीं की प्राप्ति में वह लालच की ओर तत्पर हो जाता है एवं आवश्यकता से अधिक संचय करने की कोशिश करता है। उसकी यह लोलुप प्रवृत्ति बढ़ती ही जाती है और इस लालच में वह अनेको बुरे कार्यों में लग जाता है। यहाँ तक कि दूसरों को दुख पहुँचा कर भी वह अपनी लोलुपता को शान्त करने में परहेज नहीं करता।

अब आता है मद अर्थात् नशा! यह कई प्रकार का होता है – धन का, लालच का, क्रोध का, काम का पाशविकता का एवं गलत आदतों का। इच्छाओं का दास होने के कारण मनुष्य किसी न किसी नशे में उन्मादित होकर आज अपनी मर्यादाओं को लांघ रहा है एवं मानवता का हनन करके स्वयं अपना शत्रु बना हुआ है।

मनुष्य को आन्तरिक रूप से कमजोर करने वाली उसकी अन्तरंग शत्रु है ईर्ष्या एवं द्वेष। दूसरों की उन्नति या सुख से इन्सान आप जलने लगा है वह अपने दुख से दुखी नहीं है बल्कि दूसरों की सुख समृद्धि उसे सहन नहीं होती और वह मन ही मन ईर्ष्या द्वेष में जलने लगता है। आज का मनुष्य दूसरे को उन्नत अवस्था में नहीं देख पाता उसके अन्दर ईर्ष्या एवं द्वेष का इतना गहरा सैलाव उमड़ता है कि वह पाशविकता पर उतर आता है। दूसरों को नीचा साबित करने में वह पापों के गर्त में उतर जाता है। दूसरों की उन्नति या समृद्धि में सहयोग करने की जगह वह उसकी राह में बाधा उत्पन्न करके अपनी ईर्ष्या द्वेष की आग को ठण्डा करता है।

मनुष्य के आन्तरिक शत्रु ही उसे ऊपर उठने में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। यही वे दुर्गुण है जो उसके और ईश्वर भक्ति के मार्ग में बाधक हैं। मनुष्य जब तक अपना आध्यात्मिक विकास नहीं करेगा तब तक उसे इन शत्रुओं से मुक्ति नहीं मिलेगी और न ही वह अपना या समाज का उत्थान कर सकेगा।

– **कुमकुम बिसारिया**
आदर्श नगर, झांसी

ब्रह्म ज्ञान

एक समय ऋषिपुत्र नचिकेता ने यमाचार्य से प्रश्न किया – ब्रह्म क्या है? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्युत्तर में यमराज ने उन्हें समझाया ईश्वर को प्राप्त करना कोई सहज बात नहीं हैं। वह अति दुस्तर और कठिनाई से ही जाना जा सकता है। इस संसार में बहुत सुखद पदार्थ हैं धन, यौवन, दीर्घ जीवन, राज सिंहासन और तू कहे तो मैं तुझे अनन्तकाल तक सुखोपभोग करने वाली सामर्थ्य प्रदान कर सकता हूँ, मगर तू ब्रह्म को जानने का हठ न कर।

नचिकेता ने सारी बातें ध्यान से सुनी एवं यमराज के संभाषण के समाप्त होने पर सरलता के साथ जबाव दिया –''देव! बहुत सुखोपभोग प्राप्त कर लेने पर भी क्या मेरा यह जीवन बना रहेगा? फिर भोगो से तृप्ति भी तो नहीं होती, इसलिए अपना धन आपका ऐश्वर्य, राज सिंहासन तथा नाच गान अपने ही पास रखें। मुझ पर यदि प्रसन्न हो, तो वही उपदेश दें जिससे मेरा आत्म कल्याण हो''।

नचिकेता की दृढ़ता पर यमराज प्रसन्न हुए और उसे ब्रह्म – विद्या का ज्ञान कराया।

"गुरू से ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय"

भगवान बुद्ध के पास एक सेठ आत्म ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा से पहुँचा। पहुँच कर अपने आने का मतलब स्पष्ट किया, बोला भगवान् मुझे कुछ आत्म ज्ञान दीजिये।

दूसरे दिन बुद्ध ने उसके घर पर जाकर उत्तर देने का आश्वासन देकर उसे विदा कर दिया। स्वयं भगवान बुद्ध घर आ रहे हैं यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। यह सोचकर अच्छी खीर बनाई, भगवान बुद्ध दूसरे दिन कमण्डल लेकर उसके यहाँ पहुंचे सेठ बोला भगवान आपके लिए खीर तैयार की है। कृपा करके प्रसाद ग्रहण करें। बुद्ध भगवान ने खीर के लिए अपना कमण्डल आगे कर दिया। सेढ खीर देने के लिए आगे बढ़ा उसने ध्यान से देखा तो कमण्डल में गोबर भरा हुआ था। सेठ ने सोचा इस पात्र में खीर देने से वह बेकार हो जायेगी। भगवान बुद्ध हँसे और बोले – वत्स तुम्हारे कल के प्रश्न का यही उत्तर है। आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए पहले प्रात्रता विकसित करो अपनी अंतरात्मा को शुद्ध करो आत्म ज्ञान जैसी महान उपलब्धि प्रात्रता विकसित किये बिना प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए हमें नित्य सत्संग करना है।

जिससे हमारे अन्तःकरण में कलुष न रह जाये वाह्रय जीवन में दम्भ न शेष रह जाये। तभी आत्म ज्ञान प्राप्ति हो सकता है एवं हमारा मानव जीवन सफल हो सकता है।

गुरू वे विनती

हे गुरूवर कैसे करूँ में शुक्रिया तुम्हारा
गुरूवर आप आये जो बनकर गीत हमारा
सोचा भी न था कभी हमने मिलेगा तेरा सहारा
पाया हमने आपको सामने जब भी पुकारा
हे गुरूवर कैसे करूँ में शुक्रिया तुम्हारा।
मोह माया के बन्धनों से तूने हमें निकाला।
जीवन के अंधेरे में फैला दिया ज्ञान का उजाला।
हे गुरूवर कैसे करूँ में शुक्रिया तुम्हारा
अब तो न कोई डर है न कोई फिकर
गुरूदेव है जब साथ बनकर हमसफर
मुझे आत्म ज्ञान कराकरा के जीवन नया दिया है
अब तो इस जीवन की नाव को मिल जायेगा किनारा
हे गुरूवर कैसे करूँ में शुक्रिया तुम्हारा
द्वार द्वार भटक कर मैं हारा अब मिल गया गुरूवर तेरा सहारा।

– श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव
वन्डा (सागर) म.प्र.

अनिर्वचनीय

अनिर्वचनीय तत्त्व को वचनीयता में लाने के लिए ही समस्त वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र तथा अन्यान्य शास्त्र तथ सन्त समाज संलग्न है।

अद्वय तत्त्व को प्रमाणित करने तथा उसका साक्षात्कार करने–कराने के लिए अन्ततोगत्वा शब्दों का सहारा लेने के लिए सभी की विवशता है।

अतीन्द्रिय तत्त्व को इन्द्रियों के द्वारा साक्षात्कार करना दुर्धर्ष है, वह तो शब्दों में न समाने वाला उसका स्पर्श भी नहीं किया जा सकता, उसका कोई रूप न होने के कारण उसको दृश्य के रूप में नेत्रों द्वारा देखा भी नहीं जा सकता, रसना से भी उसे नहीं जाना जा सकता तथा गन्धहीन होने के कारण उसे नासारन्ध्रों द्वारा भी अनुभव नहीं किया जा सकता।

जो कहते हैं कि मैंने उसे जान लिया उन्होंने उसे नहीं जाना तथा जो कहते हैं मैंने उसे नहीं जाना उन्होंने ही उसे जाना क्योंकि वह यह तो जान गया कि उसे नहीं जाना जा सकता, वह अज्ञेय है, अज्ञेय से तात्पर्य दुर्विज्ञेय है।

लौकिक अलौकिक को नहीं जान सकता क्योंकि उसके पास जानने के साधन के रूप में लौकिक इन्द्रियाँ ही तो हैं। अलौकिक जब लौकिक को शक्ति प्रदान करता है तभी वह श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित संजय की भाँति अलौकिक दृष्टि प्राप्त कर सकता है।

वह आकाश कुसुमवत् वन्ध्यापुत्रवत् अथवा शशश्रड्ग्वत् नहीं है क्योंकि इनका तो सदैव अभाव ही रहता है परन्तु उसका कभी अभाव होता ही नहीं है।

उसको आगम और निगमन पद्धतियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं। आगम अर्थात शास्त्र एवं सन्तों द्वारा उपदिष्ट तथा निगमन नेति–नेति (यह नहीं – यह नहीं) के पश्चात् जो शेष रह जाये वही वह अनिर्वचनीय तत्त्व है।

वायु, अग्नि, रसरूप प्रवहमान सरिताएं सभी का अवस्थान आकाश तथा यह पृथ्वी सभी कुछ उसी अनिर्वचनीय से ही प्रकाशित है।

अनिग्रहीत उसे नहीं जान सकता।

शास्त्र सुनने तथा पठन–पाठन से ज्ञान तो हो जाता है परन्तु उसका अपरोक्ष करने के लिए तो यौगिक पद्धति में ध्यान एवं समाधि ही अन्तिम साधन है अनिर्वचनीय अवयवरहित के अनुभव करने का।

जिस प्रकार घटों में आकाश घट के अनुरूप ही आकार ग्रहण कर लता है उसी प्रकार वह अनिर्वचनीय अद्वय सरोवरों में सरिताओं तथा पोखरों में एक ही सूर्य विभिन्न रूप आकार ग्रहण कर लेता है, की तरह जीव के अनुरूप ही रूप ले लेता है तत्त्वतः वह वेदान्त का सार अद्वय अद्वैत है।

भक्ति पथ में उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा तथा समर्पण ही प्रमुख साधन है जिसके माध्यम से ही मीरा, चैतन्य महाप्रभु, तुलसी, सूरदास, नरसी मेहता, नामदेव तथा रैदास आदि ने उसे जाना।

जिस प्रकार मकड़ी जाल का निर्माण करती और उसे निगल भी जाती है उसी प्रकार उस परमतत्त्व से विश्व सृजन होता है और उसी में लय हो जाता है। यही ज्ञान उस अनिर्वचनीय का साक्षात्कार समझना चाहिए।

जिस प्रकार अन्धकार में रखी हुई वस्तु को देखने के लिए मात्र अन्धकार नष्ट करना ही अपेक्षित है उसी प्रकार अदृष्ट अनिर्वचनीय का साक्षात्कार करने के लिए अविद्या का नाश करना ही अभीष्ट है और कुछ भी अपेक्षित नहीं है।

– **पुरूषोत्तम नारायण गुप्त**
सीपरी बाजार, झांसी

गीता में प्रतिपादित भक्तियोग की प्रासंङि्गकता

''पार्थ प्रपन्नमुदि्दश्य शास्त्रावतरणं कृतम्''

श्रीमद्भागवद्गीता भारतीयवाङ्मय का सर्वाधिक समादृत आचारशास्त्र का ग्रन्थ है। गीता में जगद्गुरू श्रीकृष्ण ने अपने परमप्रिय भक्तमित्र कौन्तेय अर्जुन को ज्ञानमय– निष्कर्मविज्ञान एवं भक्तियोग का उपदेश दिया है। परिस्थिति वश, योगेश्वर वासुदेव द्वारा प्रत्यक्षतः उपदिष्ट 'सृष्टिरहस्य' पार्थश्रव्य था, किन्तु भगवानृ की अभिलाषा यही थी, कि गीता का उपदेश भगवद्भक्तों तक पहुँच जाय। उपदेश–परक संवादात्मक–प्रवृत्ति से इसी तथ्य का पोषण होता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी गीता में प्रतिपादित आत्मविज्ञान–सिद्धान्त, कार्यदक्षता विषयक कर्मयोग तथा परम शान्तिदायक भक्तियोग विश्व का दिशा–दर्शक है। गीता में विवेचित ब्रह्मविद्या एवं भक्ति ही नीति एवं सत्कर्म का आधार है। 'सर्वभूतहिते रतः' को आदर्श मानकर ही आधुनिक आधिभौतिक विज्ञानियों ने नैतिक सिद्धान्त को स्वीकार किया है, कि प्रत्येक व्यक्ति को मानवता के कल्याण के लिए उद्योग करना चाहिए। गीता में उपदिष्ट नैतिक आचरण तथा आचार–विचार से मानव परमात्मा के शुद्धस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर बुद्धितत्व को परिमार्जित कर सकता हैं। गीता में प्रतिपादित आत्मा की अमरता, ज्ञानमूलक कर्मयोग तथा भक्तियोग सार्वजनीन एवं सार्वकालिक है। गीता का प्रस्तुत पद्य इसकी सार्वभौमिकता को ही प्रमाणित करता है –

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यीति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यशंसयः।।

श्रीमद्भगवद्गीता का मुख्य प्रयोजन मनुष्य को भौतिक चिन्ताओं से मुक्त करना है। भौतिक कल्मषग्रस्त चेतना से मुक्त हो जाने पर ही दिव्य जगत् के विषय में जिज्ञासा होती है। जैमिनीयसूत्र 'अथातो धर्मजिज्ञासा' तथा बादरायणसूत्र ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' प्रभृति महर्षियों के सूत्र भौतिक एवम् आध्यात्मिक अभ्युन्नति के साधन हैं। गीत के प्रथम श्लोक –

धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।

ये प्रयुक्त ''धर्म'' शब्द विशेष अभिप्राय को प्रदर्शित करता है। भारतीय संस्कृति में किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व मंग्लाचरण की शिष्ट परम्परा है। इसी आदर्श रीति का पालन निर्देशात्मक मंगल का द्योतक है। मंगलाचरण शिष्टाचाराद् फलदर्शनात् श्रुतितश्च।'' गीता ऐसा उपनिषद् है, जिसमें चारयुग, चार वेद, चार आश्रम, चार वर्ण, चार पुरूषार्थ की तरह चार का ही संवाद है। 1. धृतराष्ट्र 2. जय 3. श्रीकृष्ण 4. अर्जुन। सांसारिक मोहात्मक प्रवृत्तियों के वशीभूत पाण्डुपुत्र पार्थ की जिज्ञासा –

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरूषः
अनिन्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

समस्त भौतिकप्राणियों की समस्या है। जीवात्मा परमात्मा का अंश होने के कारण मूलतः आध्यात्मिक, शुद्ध एवं समस्त भौतिक–कल्मषों से मुक्त रहता है। अतः उसे भौतिक जगत् के पापों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। पाण्डुपुत्र द्वारा प्रस्तुत अत्यन्त प्रत्याशापूर्ण प्रश्न, कि जीवों की प्रकृति विकृत क्यों हो जाती है, का समाधान पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण ने गीता में किया है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
महाशनो महापाप्मा विद्येनमिह वैरिणम्।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा
कामरूपेण कौन्तेय दूष्पूरेणानलेन च।
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्तदेहिनम्।
तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

जीवात्मा चिदानन्द परब्रह्म का ही अंश है, किन्तु भौतिक सृष्टि के सम्पर्क में आने वाले जीवात्मा का सात्त्विक स्वरूप रजोगुण की संगति से काम में परिवर्तित हो जाता है तथा काम (इच्छा) की संतुष्टि न होने पर यह काम, क्रोध में तथा क्रोध मोह में परिणत हो जाता है। क्रोध तमोगुण का प्राकट्य है। अतः जीवात्मा का सबसे बड़ा शत्रु काम (अभिलाषा–वासना) है जो विशुद्ध जीवात्मा को संसार में संपृक्त रहने के लिए प्रेरित करता है, किन्तु यदि संसार में रहने एवं कार्य प्रवृत्तियों द्वारा रजोगुण को तमोगुण में गिरने दिया जाय तथा उसे सत्वगुण की ओर उपर उठाया जाये, तो मनुष्य को आध्यात्मिक आसक्ति के माध्यम से क्रोध में पतित होने से बचाया जा सकता है। काम ही इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु है। कभी भी सन्तुष्ट न होने वाले कामरूपी शत्रु से ज्ञानमय जीवात्मा की शुद्धचेतना आवृत हो जाती है। इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि इस काम के अधिष्ठान हैं। इनके माध्यम से ही काम जीवात्मा (देही) के यथार्थ ज्ञान को आवृत कर मोहित कर लेता है। परिणामतः इन्द्रियसुख जीवात्मा का स्वभाव बन जाता है। अतः इन्द्रिय संयम के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान (आत्मसाक्षात्कार) के विनाशक, पाप के प्रतीक, काम का दमन करना चाहिए। यहाँ पर ज्ञान का तात्पर्य है – आत्मा तथा अनात्म के भेद का बोध तथा विज्ञान का तात्पर्य है आत्मा का स्वभाविक स्वरूप तथा परमात्मा के साथ उसके सम्बन्ध का विशिष्ट ज्ञान। 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' कथन द्वारा श्रीकृष्ण ने इसी तथ्य का निरूपण किया है। ब्रह्यात्मैक्यज्ञान ही परम सत्य है और साध्य भी। इस ज्ञान के समान पवित्र संसार में कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इस संसार में, आश्चर्य चकित होकर ब्रह्म का वर्णन करने वाले तथा सुनने वाले अनेक हैं, फिर भी आसानी से उसका बोध नहीं हो पाता। परमज्ञानी आर्षमनीषी भी नामरूपात्मक माया से आच्छादित परमतत्त्व की कार्य पद्धति पर मोहित हो जाते हैं किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः तो सामान्य मानव को परमात्मबोध कैसे संभव है। प्रस्तुत समस्या पर गीता में बताया गया है कि तामस तर्क बुद्धि इसमें सन्देह उत्पन्न कर देती है। परमात्म विषयक निश्चयात्मक ज्ञान के लिए कर्मयोगी तथा बुद्धियोगी को श्रद्धालु होना आवश्यक है–

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।

ब्राह्मी स्थिति या सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेना ही इस संसार में मनुष्य का परम–साध्य है। दीर्घ समय के अभ्यास और नित्य की आदत से इस ज्ञान का प्रवेश हृदय तथा देहन्द्रियों में हो जाये तथा आचरण–व्यवहार के द्वारा ब्रह्यात्मैक्य बुद्धि ही हमारा स्वभाव हो जाय तो श्रद्धा पूर्वक परमेश्वर के स्वरूप का चिन्तन करके मन को तदाकार किया जा सकता है। अति प्राचीन काल से प्रचलित यही प्रक्रिया ही उपासना या भक्ति है ''सा 'परानुरक्तिरीश्वरे'' – ईश्वर के प्रति निरतिशय प्रेम ही भक्ति है। भागवत पुराण में कहा गया है कि वह प्रेम निष्काम, निर्हेतुक और निरन्तर होना चाहिए – 'अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरूषोत्तमे'।

भक्तिमार्ग में अव्यक्त परमेश्वर को ही व्यक्त परमेश्वर का रूप प्राप्त हो जाता है। परमसत्य की अनुभूतियों की विभिन्न विधियों में भक्तियोग सर्वोत्कृष्ट है तथा भगवत्सानिध्य के लिए सर्वाधिक सुगम साधन है। शुद्ध भक्ति करने वाले मनुष्य को इसकी अनुभूति होने लगती है कि ईश्वर महान् है, जीवात्मा उसके अधीन है। भगवद् बुद्धि से सभी कार्य सम्पन्न करना ही भक्ति है। मन, बुद्धि एवं कर्म से ईश्वर के प्रति सर्वथा समर्पण ही परमभक्ति का स्वरूप है। भक्तियोग के माध्यम से भगवदनुग्रह प्राप्त हो जाता है तथा भक्त के उद्धार का दायित्व परमात्मा अपने ऊपर ले लेता है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः, अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्, भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्।।

अध्यात्मवादी भक्तों की दो श्रेणियां है – 1. निर्विशेषवादी 2. सगुणवादी। सगुणवादी अपनी सारी शक्ति से परमेश्वर की सेवा करता है। निर्विशेषवादी भी परमेश्वर की ही सेवा करता है, किन्तु प्रत्यक्ष से न करके निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान करता है। शास्त्रों में प्रतिपादित विविधरूपा साधन–भक्ति परिपाक की स्थिति में साध्यभक्ति (परा–भक्ति) हो जाती है। साधन साध्यरूप में रूपान्तरित हो जाता है। ज्ञान, भक्ति का प्रारम्भ है और भक्ति, ज्ञान की पराकाष्ठा। यहाँ ज्ञान का तात्पर्य है उत्कृष्ट चिन्तन और भक्ति का अभिप्राय है – संवेदना या भावना। ये जीवन–नौका के दो तट है, जिनके मध्य जीवन की चेतना प्रवाहित होती है। दोनो के समुचित विकास से ही जीवन में परमात्मा का दिव्य आलोक प्रकाशित होता है, दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है। ज्ञान उर्वरभूमि तैयार करता है, कुत्सित प्रवृत्तिरूपी खरपतवारों को उखाड़ देता है। फिर उस भूमि में भक्ति के संयोग से समुचित विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। संवदेना–शून्य चिन्तन नीरस हो जाता है तथा विवेक (यथार्थज्ञान) के अभाव में भावना अन्धी हो जाती है, जीवन भटक जाता है। ज्ञान बुद्धि से उपजता है और भक्ति हृदय की गहराई से ज्ञान से बुद्धि परिष्कृत हो जाती है, किन्तु भक्ति के अभाव से पल्लवित नहीं होती। ज्ञान व भक्ति दोनों पतवारों से ही जीवन–नौका पार लगती है। गीता मानवीय जीवन यात्रा के लिए ऐसा सुपाच्य पाथेय देती है, ऐसी संजीवनी देती है, जो प्रत्येक देश में प्रासंगिक है।

उपनिषदों का तत्व प्रसारित करने वाली जगद्गुरू श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निःसृत तथा कर्मद्वन्द्व में उलझे हुए पार्थ को सत्कर्म में प्रवृत्त करने के लिए ही गीता का उपदेश है। भारत वर्ष के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन का नवनीत प्रस्तुत करने वाला गीतोपनिषद् ज्ञानी के लिए ज्ञानयोग है – 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'। जो कर्मठ है, समर्थ हैं, विजय, विभूति और पुरूषार्थ के लिए संघर्ष कर सकते हैं, उनके लिए गीता कहती है – 'सिद्धिः भवति कर्मणा।'' ये दोनों मार्ग शारीरिक एवं बौद्धिक रूप से समर्थ साधकों के लिए ही संभव है। ''स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लगते नरः'' के अनुसार अपना नियत कर्म पूर्ण मनोयोग से करना ही परमात्मा की पूजा है। गीता में पात्र भेद से मानव के अभ्युदय का मार्ग बताया गया है। ज्ञान कर्म भक्तियोग के विषय में आचार्यों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से भाष्य लिखे हैं। गीता में तीनों की शिक्षा दी गयी है। इनमें से किसी को भी जीवन में उतरने के लिए गीता बुद्धियोग की शिक्षा देती है। गीता में उपदिष्ट सभी मार्ग पात्र भेद से प्रभावी हो हैं। गीता में भक्तों की चार श्रेणियाँ मानी गयी हैं। –

चतुर्विधाः भजन्ते मां लोकेऽस्मिन् सुकृतिनोऽर्जुन
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षम।

1. आर्त 2. जिज्ञासु 3. अर्थार्थी 4. ज्ञानी।

सकाम भक्ति राजस होती है। इसलिए इसमें पूर्णतया चित की शुद्धि नहीं हो पाती।

परिणामतः चित्त–शुद्धि के अभाव में आध्यात्मिक प्रगति में बाधा हो जाती है। ज्ञानी पुरूष कर्तव्यबुद्धि से ही परमेश्वर की भक्ति करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से भक्ति, ज्ञान का साधन है। भक्ति–मार्ग का तथा ज्ञानमार्ग का परमसाध्य समान है। परमेश्वर के अनुभावात्मक ज्ञान से अन्त में मोक्ष प्राप्त होता है। गीता में भक्ति और आध्यात्म अथवा श्रद्धा और ज्ञान का पूरा–पूरा मेल रखने का प्रयास किया गया है। अध्यात्मविज्ञान का सिद्धान्त है कि पिंड और ब्रह्माण्ड में एक ही आत्मा नाम रूप से आच्छादित है, परन्तु भक्तिमार्ग में अव्यक्त परमेश्वर को ही व्यक्त परमेश्वर का रूप प्राप्त हो जाता है। अनन्य भगवद्भक्त अर्थात् जो भगवान् की भक्ति में लीन है, वह समस्त लक्ष्यों को प्राप्त कर लेता है। गीता में परम सिद्धि प्राप्त करने का साधन शरणागति को ही बताया गया है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

भगवान श्रीकृष्ण ने पार्थ को अनेक प्रकार के ज्ञान तथा धर्म–विधियों का उपदेश देकर ज्ञानी बनाया है। इन्द्रियों के कर्म ज्ञानी तथा अज्ञानी में एक जैसे रहते है, किन्तु ज्ञानी मनुष्य अनासक्त बुद्धि से तथा अज्ञानी आसक्त बुद्धि से कर्म सम्पन्न करता है। यदि गीता का सन्देश हमारे विचारों में प्रवेश कर कर्मों में रूपान्तरित हो जाये तो व्यक्तिगत प्रभाव के साथ–साथ हमारे समाज का स्वरूप भी बदल सकता है।

एक लाख श्लोकों वाले विशालग्रन्थ महाभारत के भीष्मपर्व के पच्चीसवें अध्याय से प्रारम्भ होकर बयालीसवें अध्याय में गीतोपनिषद् परिपूर्ण होता है। दिव्यदृष्टि सम्पन्न सञ्जय द्वारा हस्तिनापुर सम्राट धृतराष्ट्र को कुरूक्षेत्र में युद्ध का वर्णन आधुनिक ''साहित्यिक–विधा'' फ्लैश बैक या पूर्वदीप्ति के रूप में किया गया वर्णन हजारों वर्ष पूर्व भारतीय अभिव्यक्ति के चामत्कारिक रूप को प्रदर्शित करता है। कौन्तेय अर्जुन की विषाद से प्रारम्भ होने वाली मानसिक प्रक्रिया उसके कर्मप्रवृत्त होने के निर्णय पर समाप्त हो जाती है। गीता के अठारहवे अध्याय में 73 वें श्लोक पर अर्जुन घोषणा करता है कि ''मेरा मोह नष्ट हो गया है, अब मैं आपके आदेश का पालन करूँगा''।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लधा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत, स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करष्यि वचनं तव।

पाश्चात्य जगत् में मान्यता है कि कर्म–अकर्म विषयक विवेक अथवा नीतिशास्त्र पर यूनानी तत्त्ववेत्ता अरस्तू ने ही सर्वप्रथम विचार किया है, किन्तु सत्य तो यह है कि भारतवर्ष में अरस्तू की अपेक्षा अधिक व्यापक एवं तात्त्विक दृष्टि से जिस नीतितत्त्व का प्रतिपादन गीता में है, उससे पृथक, कोई भी नीति–परक ग्रन्थ अद्यावधि नहीं है। जगदगुरू शंकराचार्य, शेषावतार रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु प्रभृति क्रान्तप्रज्ञ मनीषियों ने इसकी पुष्टि की है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के पुरोधा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की शक्ति का स्रोत गीता ही रही है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने अपनी प्रसिद्ध रचना ''विंग्ज आफ फायर'' में लिखा है कि वे गीता से अत्यन्त प्रभावित हैं, विषम–परिस्थिति में गीता उन्हें हर समस्या का समाधान देती है। सच तो यह है, कि गीता में वर्णित अर्जुन का विषाद, आज के दिग्भ्रमित तनावग्रस्त मानव का अलंकार बन चुका है। अतः श्रीमद्भगवदगीतोपनिषद् में विवेचित कर्मकौशल सिद्धान्त तथा ज्ञानमय भक्तियोग सामयिक, सार्वभौमिक एवं प्रासंगिड्क है।

– डॉ0 बी0 बी0 त्रिपाठी
राजकीय महिला महाविद्यालय, झांसी

दायित्व – एक सामाजिक जागृति

सामाजिक कर्तव्यों की अवहेलना या पारिवारिक उत्तर दायित्वों से पलायन दोनों ही सामाजिक अपराध है जिनकी सजा केवल हम और आप ही नहीं हमारे बच्चों को भी भुगतना पड़ता है। देश के भावी नागरिक और इस समाज के कर्णधार इन बच्चों के प्रति क्या हम अपने दायित्वों का पालन ईमानदारी से कर रहे है? उस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें अपना ही मूल्यांकन करना होगा समाज में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, अंगेजी शिक्षा एवं टेलीविजन के केबिल प्रसारण ने बाल एवं युवा वर्ग को हमारी संस्कृति एवं सभ्यता से बहुत दूर कर दिया है। यही कारण है कि आज का युवा वर्ग घर परिवार तथा समाज के प्रति अपने उत्तर दायित्वों से भागता जा रहा है। स्वार्थपरता तथा पारस्परिक प्रतिद्वन्दता की अंधी दौड़ में इनके कदम कहाँ रूकेंगे कुछ पता नहीं। लेकिन इनके पलायन में हमारा कितना योगदान है – आइए स्वयं से पूछें–

1. बच्चे सब कुछ घर से ही सीखते हैं – तो क्या हम अपने उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभा रहे हैं।
2. क्या हम अपने परिवार के बुजुर्गों, सदस्यों एवं बच्चों के प्रति कर्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक कर रहे हैं?
3. क्या हम बड़ी होती अपनी बेटियों को घरेलू जिम्मेदारियों से अवगत करा रहे हैं।
4. क्या हम बेटियों को बता रहे हैं कि शादी के बाद ससुराल में समर्पण त्याग एवं आत्मीयता की जरूरत होती है।
5. क्या हम उनमें सीता, सावित्री जैसी सहनशीलता और त्याग की भावना विकसित कर रहे हैं?
6. क्या हम अपने लड़कों में अनुशासन और जिम्मेदारियों का बोझ उठाने की सामर्थ्य भर रहे हैं?
7. क्या हम अपने बेटों में पारिवारिक एवं सामाजिक नेतृत्व की क्षमता का विकास कर रहे हैं?
8. टी.वी. पर प्रसारित होने वाले अनेक कार्यक्रमों में हमारे बच्चों के लिए क्या उचित है क्या अनुचित है इस पर ध्यान देते हैं?
9. सद्चरित्र ही जीवन है इस मूलमंत्र को बच्चों तक कब पहुंचा रहे हैं।?
10. क्या हम स्वयं इन तथ्यों पर खरे उतर रहे हैं?

इन 10 प्रश्नों को स्वयं से पूछिए। यदि इन में 7 प्रश्नों के उत्तर भी आप सकारात्मक पा रहे हैं तो निश्चित रूप से आप अपने समाज का एवं परिवार का कल्याण कर सकेंगे क्योंकि घर के परिवेश में बहुत से गुण व अवगुण हमारे बच्चे अपरोक्ष रूप से हमारे आचरण से ही सीखते हैं। अतः यदि हमें अपने बच्चों का विकास सही दिशा में करना है तो हमें स्वयं अपने आचरण का मूल्यांकन करके उसमें आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे। यदि हम अपने परिवारों से एक–एक ही सुयोग्य नागरिक इस देश को दे सकें तो वास्तव में यही हमारी सच्ची समाज सेवा होगी और सच्ची देश सेवा भी।

– कुमकुम बिसारिया
सीपर बाजार, झांसी

''ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना''

जीव के ऊपर भगवान की असीम कृपा होने से सद्गुरू के रूप में संत मिल जाते हैं, जो कि उसे आत्म ज्ञान का बोध कराकर निजस्वरूप की पहचान करा देते हैं। जिससे कि उसे शरीर और संसार की परिवर्तनशीलता का ज्ञान होता है और वह शरीर के प्रति मोह, ममता, और आशक्ति का त्याग करके आत्मज्ञान प्राप्ति करने में रूचि लेता है।

''जिमिअविषेकी पुरूष शरीर हिं'' अर्थात अज्ञान से मनुष्य अपने शरीर को अपना स्वरूप मानकर उसे सजाने और संभालने में ही अपने जीवन के दिन खो देता है, तभी तो सन्त तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में कहा है कि :–

''जा दिन मन पंछी उड़ जैहें।''
''तादिन तेरे तन तरूवर के, सबै पात झरि जैहैं।।''

इसी प्रकार सूरदास जी ने भी कहा है कि :–

''धोखे में ही सब जनम गंवायो, ''कहने का भाव यह है कि सह जीव शरीर को अपना रूप–स्वरूप समझकर धोखे में ही जीवन के दिन खो रहा है।

जिस प्रकार से बन्दर सँकरे (छोटे) मुँह के घड़े के अन्दर भरे हुए चनों को खाने के लिए हाथ को घड़े के अन्दर डालकर चनों को अपनी मुठ्ठी में भर बन्द कर लेता है, मुठ्ठी बन्द होने से वह अपने हाथ को घड़े से बाहर नहीं निकाल पाता और अपने को बंधा हुआ समझने लगता है। यदि वह चनों के लोभ को छोड़कर मुठ्ठी खोल दे, तो उसका हाथ घड़े से निकल सकता है।

तुलसीदास जी ने भी जीवन के बंधन का कारण बताते हुए कहा है कि – सो माया वसभयउ गोसांई। बंध्यों कीर मकरट की नाई।।

कहने का भाव यह है कि माया की घट है और विषय भोग वासना की आशक्ति ही ममता में फसे चनों केक समान सुखदायी लगते हैं, जिन्हें कि जीव मनसे पकड़े हुए है, और छोड़ना नहीं चाहता किन्तु, जब काल (मौत) रूपी मदारी का मौत रूपी डण्डा सामने आता है, तब यह जीव सभी विषय भोग–ममता व आशिक्त घर परिवार को छोड़कर अकेले ही परधाम की यात्रा पर चल देता है। सन्त कहते है कि अब छोड़ा तो क्या छोड़ा, छोड़ना ही था तो पहले छोड़कर सदगुरू की शरण में आकर अथवा भगवान की शरण में जाकर आत्मज्ञान पा लेता तो उसका जन्म–मृत्यु का फंदा (बंधन) छूट जाता। और वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता, इसी भाव को बताते हुए, काकभुसुण्ड जी ने गरूड़ जी से कहा है कि – **जो निर्विघ्नपंथ निर्वहाई। सो कैवल्य परम पद लहई।।**
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।

इसी प्रकार से भगवान श्री कृष्ण जी ने भी गीता में भी कहा है कि :–

तमेवशरणगच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसिशाश्चतम्।।

हे भारत अर्जुन! तू सर्व भाव से उस ईश्वर की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से तू परम शान्ति (संसार में सर्वथा उपरति) को और अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जायेगा।

कहने का भाव यह है कि सदगुरू जीव को उसके बन्धन का कारण मोंह, ममता, और विषयाशक्ति ही बताते हैं, और इसी के कारण वह मनुष्य न चाहता हुआ भी जबरदस्ती लगाये हुए की तरह किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है। इसका उत्तर देते हुए भगवान ने कहा है कि :–

''काम एष क्रोध एष रजो गुण समुभद वः।
महाशनो महापाप्मा विदध्येनामिंह वैरिणम्।।

श्री भगवान बोले – रजोगुण से उत्पन्न यह काम अर्थात् कामना (ही पाप का कारण है) यह काम ही क्रोध में परिणत होता है। यह बहुत खाने वाला और महापापी है। इस विषय में तू इसको ही बैरी जान।

कहने का भाव यह है कि सद्गुरू जीव को अज्ञान के कारण मोह की निशा में सोते हुए, जानकार उसे जगा देता है, तभी तो रामचरित मानस में कहा कि –

''मोह निसां सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।
यहिं जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच वियोगी।
जानिज तबहि जीव जग जागा।
जब सब विषय बिलास विरागा।।

कहने का भाव यह है कि सदगुरू के सत्संग से जब जीव के अन्दर विवेक की अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती हे, और मोह का निशा दूर होकर स्वप्न टूट जाता है, अर्थात् जीव जाग जाता है, तब वह अपनी समस्त इच्छाओं–भोग, बिलास, और कामनाओं की आहुति विवेक की अग्नि में दे देता है, और सन्यास धर्म को धारणकरके आशक्ति रहित निष्काम भाव से सभी कर्मों को करते हुए, परोपकार और परसेवा में अपने जीवन को लगाकर भगवान के भजन और भक्ति में अपने दिनों को व्यतीत करने लगता है। फिर उसे संसार से कुछ लेना–देना नहीं रहता है। बल्कि वह सन्त कबीर की भांति कहने लगता है कि :–

''हमनं् मरैहैं, मरिहै संसार'' अर्थात वह आत्मस्वरूप का बोध प्राप्त करके आत्मा में रमण करते हुए, विरक्त योगी की भांति–जीवन जीते हुए, माया–मोह के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है, क्योंकि उसे आत्म ज्ञान हो जाता है और आत्मज्ञान बिना सब सूना अर्थात भौतिक ज्ञान, संस्कार की वस्तुओं का ज्ञान, सामाजिक ज्ञान, राजनैतिक ज्ञान, ऐतिहासिक ज्ञान, भौगोलिक ज्ञान, व्यवहारिक ज्ञान, परिवार की परम्परा, का ज्ञान सभी ज्ञान, आत्म ज्ञान के बिना व्यर्थ है। और यह आत्म ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। तभी तो ठीक ही कहा है कि :–

''ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना''।

– पं0 वेद प्रकाश त्रिवेदी
सीपरी बाजार, झांसी

'' सदगुरू वैद वचन विश्वासा''

मनुष्य को भगवान की कृपा से सदगुरू की प्राप्ति होती है। सद्गुरू वास्तव में सच्चे संत ही होते हैं, जो कि मनुष्य के मन में व्याप्त मानसिक रोगों को दूर कर देते हैं। रामचरित मानस में भी कागभुसुंड जी ने गरूड़ जी को मानस रोग के विषय में कहा है कि –

''सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह तें दुःख पावहि सब लोगा।

''मोह सकल व्याधिन्ह करमूला। तिन्हते पुनि उपजहिं बहुसूला।।

इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ, ममता, ईर्ष्या, अहंकार, तृष्णा, मत्सर, आदि अनेक मानस रोग बताये गये हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि :–

'' एहि विधि सकल जीवन जग रोगी। सोकहरषभय प्रीत वियोगी।।

यह मानसिक रोग ही मनुष्य के जीवन को दुःखी–अशान्त, और संसार के बन्धन में, बांधे हुए हैं। जब भगवान की असीम कृपा होती है, तभी सद्गुरू की प्राप्ति होती है। सद्गुरू के मुखारबिन्द से निकला हुआ बचन ही वेद होता है, जैसे – तृष्णा, और लोभ जैसे – रोग की निवृत्ति के लिए सन्त कबीर कहते हैं कि –

''जब आवै सन्तोष धन धूल सब धन धूल समान''। अर्थात् सन्तोष ही सबसे बड़ा धन है। इसी भाव को बताते हुए, तुलसीदास जी ने भी मानस में लिखा है कि :–

''सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ संतोष सदाई।।

तो विनय पत्रिका में तुलसीदास जी कहते हैं कि बुझै न काम अग्नि तुलसी कहु विषय भोग बहुधीते। तुलसी ने ममता को घोर अन्धकार वाली निशा बतलाया है। जो कि राग–द्वोष को बढ़ाने वाली है। तभी तो वे मानस के सुन्दर काण्ड में कहते हैं कि –

''मता तरून तभी अँधियारी। राग–द्वेष उलूक सुख कारी।।''

''तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं।।

इसी प्रकार से वे क्रोध को ही सभी पापों का कारण मानते हैं, तभी तो वे लिखते है कि –

दोहा :– लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर भूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल।।

इसी प्रकार से चिन्ता को जो कि मनुष्य के मन में रहते हुए, अशांति बनाये रखती है।

''चिन्ता साँपनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।''

इस प्रकार से रामचरित मानस में कागभुसुण्ड जी ने गरूड़ जी को अनेकों प्रकार के मन के रोगों को कैसे दूर किया जाये, क्योंकि शरीर के रोगों को दूर करने के लिए अनेकों अस्पताल और चिकित्सक जगह–जगह मिल जाते हैं, किन्तु मन के रोगों को दूर करने के लिए तो सद्गुरू की आवश्यकता होती है। सदगुरू के उपदेशके ज्ञान से बुद्धि में विवेक आता है। तभी तो कहा है कि :–

''बिनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई।।

और विवेक के होते ही मोह भाग जाता है।

होय विवेक मोह जब भागा। तब रघुवीर चरन अनुरागा।।

यह विवेक सद्गुरू के द्वारा ही प्राप्त होता है तभी तो सद्गुरू की महिमा बताते हुए कहा है

कि –

"अज्ञानमिमिरान्धंस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरू मीलित येन तस्मै श्री गरुवे नमः।।"

"अज्ञान रूपी अन्धकार से अंधी हो रही आँखी को जिन्होंने ज्ञानरूपी सुरमें की शलाका को खोल दिया है। उन परम दयालु श्री गुरूदेव को मेरा प्रणाम है। इसी भाव को रामचरित मानस में बताते हुए कहा है कि :–

"उधरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनीके।।"

सदगुरू शब्द की व्याख्या करते हुए, भगवान शिवजी ने माँ पार्वती जी से कहा है कि :–

"गुकांरस्त्वंधकारोस्ति रूकार स्तेज उच्यते।
अज्ञान–ग्रासक ब्रम्हगुरूरैव व संशयः।।

गुकार अन्धकार है रूकार तेज कहलाता है। अज्ञान का ग्रास करने वाला ब्रम्हगुरू ही है। इसमें संशय नहीं है।

कहने का भाव यह है कि मानव जीवन में मन के रोगों को दूर करने के लिए सदगुरू का वचन वेद के समान है, जिस प्रकार से वेद रोगी के रोग को समझकर उसका उपचार करके उसे रोग मुक्त कर देता है।

उसी प्रकार से सद्गुरू भी मन के रोगों को समझकर गुरूमन्त्र रूपी औषधि के द्वारा मानसिक रोगों से मुक्त करके उसे मोक्ष (आवागमन जन्म–मृत्यु से मुक्ति) दिला देता है। तभी तो सद्गुरू की महिमा बताते हुए, कहा है कि –

"ध्यान मूलं गुरोमूर्तिः पूजामूलं गुरौः पदम्।
मन्त्र मूलं गुरौवाक्यं मोक्ष मूलं गुरौः कृपा।।

गुरू मूर्ति का ध्यान मुख्य ध्यान है, गुरूचरण की पूजा मुख्य पूजा है, गुरू का वाक्य मूल मंत्र है। गुरू की कृपा मोक्ष का कारण है। तभी तो कहा है कि :–

"सदगुरू वेद वचन विश्वासा"

– ठा0 लाखन सिंह तोमर
सीपरी बाजार, झांसी

ईश्वर शक्ति

ईश्वर तो अपरिमेय है
कण–कण में उसका वास है।
दिग्भ्रांत नर न हो कभी
शक्ति उसकी हर श्वांस है।

भक्ति ही तो शक्ति देती
भावित भक्ति ही मल हरे।
गुरूता – लघुता सब छोड़कर
समता हर दिल में भरे।।

– प्रमोद कुमार गुप्ता
झांसी

सतगुरू आरती

मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे ।

जिनकी चरण कमल रज सुन्दर, भव दुख सकल निबारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

दया से जिनकी द्वैत दूर हो, मन की माया टारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

वाणी अमृतमय सुन जिनकी, बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

पाकर के विज्ञान ज्ञान को, पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती । मिल कीजे।

गुरू अविनाशी घट-घट वाशी, दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सतगुरू आरती। मिल कीजे।

त्वदींय वस्तु गुरूदेव
ऊँ शान्तिः शान्तिः

पाठकों से अनुरोध

वेदान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव-रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते है। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा।

रचनाएं सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 01 जनवरी 2019 तक अवश्य भेज देंवे।

सधन्यवाद — **सम्पादक**

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस

मुद्रक - वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, झांसी फोन नं. 0510-2332931

Email : veerbundelkhandprress@gmail.com